वर्ष 7, अंक 3
(जुलाई–सितम्बर 2021)
वेबसाईटः www.aifrte.in

तालीम की लड़ाई

('केजी से पीजी' तक मुफ़्त और समतामूलक शिक्षा का समर्थक और शिक्षा में हर प्रकार के व्यापार का प्रतिरोधी मुखपत्र)

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच का त्रैमासिक प्रकाशन

संपादकीय
नजरिया:
1-दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा महिला दलित लेखकों के दुर्भावनापूर्ण सेंसरशिप के खिलाफ 6
2- शिक्षा की परिवर्तनकामी भूमिका: शिक्षा के कक्षायी संवाद का एक प्रेरक अनुभव 8
समसामियिकी:
स्कूल शिक्षा पर आपातकालिक रपट 13
ब्लेंडेड लर्निंग 16
सरगर्मियाँ: 25
संगठन की रपटें/प्रेस विज्ञप्ति :
अभाशिअमं का राशिनी 2020 के-------- 32
अभाशिअमं का नीट पर बयान 37
अभाशिअमं का चार वर्षीय कोर्स के -------- 39
अभाशिअमं गाँधी जयंती पर 40
सख्सियतें :
कमला भसीन 41
गेल ओमवेट 42
कविता: सहयोग 44

संपादक
जी शंकर
संपादक मंडल
चतुरानन ओझा (उ.प्र.)
फिरोज़ अहमद (दिल्ली)
लाल्टू (हैदराबाद)
राजेश आजाद (दिल्ली)
कवर डिज़ाइन
ओमप्रकाश कुमार (मुजफ्फरपुर)
संपादकीय संपर्क
ईमेल : taleemkiladai@gmail.com

सहयोग राशि : 26/-

सम्पादकीय

पाओलो फ्रेरे का यह जनशताब्दी वर्ष है. वे 19 सितंबर, 1921 में ब्राजील में पैदा हुए थे. सिर्फ चालीस दिनों के अंदर तीन सौ से ज़्यादा गरीब अनपढ़ गन्ना किसानों को पढना-लिखना सिखाकर उन्होंने मिशाल कायम की थी. वे उत्पीड़कों और अत्याचारियों के खिलाफ एक बुलंद आवाज़ थे. आज जब दुनिया में तानाशाही, उत्पीडन और शिक्षा में गैर-बराबरी और मनमानी का दौर है, तब उनकी जरुरत सबसे ज़्यादा महसूस होती है. उनका मानना था कि हिंसा का आरंभ वे करते हैं, जो उत्पीडन, शोषण करते हैं, जो दूसरों को मनुष्य नहीं मानते, इसका आरम्भ वे नहीं करते, जो उत्पीड़ित, शोषित हैं, जिन्हें मनुष्य नहीं माना जाता. अपने देश में जब हम शिक्षा में गैर-बराबरी की बात करते हैं तो पाओलो फ्रेरे के उत्पीड़ितों के शिक्षा शास्त्र की रोशनी में गरीबों को परम्परागत रुप से पीछे रखने की वज़हों को टटोलते हुए व्यवस्था के चरित्र को समझने की कोशिश करते हैं. भारत में राजसत्ता का फासीवादी दुरुपयोग आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व शैक्षणिक क्षेत्र की लोकतांत्रिक संरचनाओं व संस्थाओं को कमजोर कर रहा है, विकृत कर रहा है और अंततः उसको नष्ट कर देने पर आमादा है. गौरतलब है कि भारत की फासीवादी ताकतें अपने सामाजिक-राजनीतिक स्वरुप में ऐतिहासिक तौर पर जातिवादी और पितृसत्तात्मक है.

मसलन, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को इसकी तीन विशेषताओं के जरिए पहचानने की कोशिश कीजिये- कॉरपोरेटीकरण, केंद्रीकरण और साम्प्रदायिकरण. इस नीति के केन्द्र में तालीम का अबाध व अनियंत्रित कॉरपोरेटीकरण का एजेंडा
है. तालीम का साम्प्रदायिकरण मजदूर वर्ग का साम्प्रदायिक विभाजन करता है, राज्य और नव-उदारवाद के खिलाफ हो रहे संघर्षों को कमजोर करता है, गैर-तार्किकता, कट्टरता और गैर-वैज्ञानिक मानसिकता का फैलाव करता है. इन सबके मद्देनज़र अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच बाज़ारीकरण की हरकतों को पलट कर सार्वजनिक वित्त-पोषित शिक्षा व्यवस्था को मज़बूत करने की रणनीति पर काम करते हुए केंद्रीकरण और साम्प्रदायिकरण के निहित एजेंडे के खिलाफ प्रतिरोध खड़ा करने के लिये तत्पर है.

आज हुकूमत का चरित्र समझने के सिलसिले में हमें फासीवादी ताकतों की हरकतों को समझना लाज़िमी है. ये ताक़तें झूठे, मनगढंत, अवैज्ञानिक और अतार्किक प्रचार के जरिए समाज में अपने आधार का विस्तार करती हैं. गौरवशाली अतीत को सामने लाने के नाम पर यूजीसी द्वारा पेश किये गए लर्निंग आउटकम-बेस्ड करिकुलम फ्रेमवर्क(LOCF): बी. ए. हिस्ट्री अंडरग्रेजुएट प्रोग्राम, 2021 से वर्ण-जाति व्यवस्था का उदगम गायब कर दिया गया है, वहीं पूरे इतिहास के साम्प्रदायिक पाठ को पाठ्यक्रम का हिस्सा बना दिया गया है. इसी तरह से अभी हाल ही में दिल्ली विश्वविद्यालय की ओवरसाईट कमिटि ने महाश्वेता देवी, बामा और सुकिरथरानी की रचनाओं को अंग्रेजी के सिलेबस से बाहर कर दिया है. ओवरसाईट कमिटि ने नंदिता सुन्दर द्वारा लिखित 'सबाल्टर्न और संप्रभु': बस्तर का मानवशास्त्रीय इतिहास' पाठ को हटाने की कोशिश की थी. फिर दक्षिणपंथी शिक्षकों की ओर से 2019 में अंग्रेजी पाठ्यक्रम में गुजरात दंगों पर लिखी 'मनीबेन इलियास बीबीजान' को हटाने की मांग कि गयी थी. 2014 के बाद पूरे इतिहास के विकृतिकरण और भगवाकरण की मुहिम कई गुना तेज हो गयी है. सत्ता में नहीं रहते हुए भी संघ परिवार अपने फासीवादी एजेंडे को लागू करने के लिये तरह-तरह के हथकंडे अपनाता रहा है. संघियों के दबाव में ही मुक्तिबोध की रचना 'भारत: इतिहास और संस्कृति' को प्रतिबंधित किया गया था. यह भी याद रखने की जरूरत है कि 1977 में पहली बार सत्ता में भागीदारी करने के बाद ही इस फासीवादी गिरोह ने एनसीईआरटी की पुस्तकों में यह कहते हुए बदलाव कर दिया था कि वह समुदाय विशेष की भावनाओं को आहत कर देनेवाली हैं. इसी दौर में इन्होंने इतिहासकार रामशरण शर्मा की किताब 'प्राचीन भारत' को पाठ्यक्रम से बाहर करवा दिया था. ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं. अन्कनीय है कि डी. डी. कोसाम्बी, रामशरण शर्मा, डी. एन. झा, बिपन चन्द्र, सुवीरा जायसवाल से लेकर इरफ़ान हबीब और रोमिला थापर जैसे इतिहासकारों की धारा संघी फासीवादियों द्वारा इतिहास के

विकृतिकरण और भगवाकरण के खिलाफ एक मज़बूत रुकावट की तरह खड़ी है, लेकिन दूसरी तरफ, संचार क्रांति के इस दौर में पूँजी की ताकत पाकर संघी फासीवादियों ने इतिहास के विकृतिकरण की अपनी मुहिम को नया आयाम दिया है. फिल्मों, टीवी चैनल, फेसबुक, व्हाट्सऐप और ट्विट्टर जैसे सोशल मिडिया के हर पहलू पर आज फासिस्टों का बोलबाला है. इन सभी माध्यमों की सक्रियता के जरिए वे इतिहास को इसलिए भी बदल देना चाहते हैं क्योंकि इनका अपना इतिहास राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन से गद्दारी, माफ़ीनामा, क्रांतिकारियों की मुखबिरी, हिंसा और उन्माद का रहा है. आर्थिक संकट के दौर में सामाजिक ताने-बाने में तर्कना और जनवाद के अभाव का लाभ उठा कर पूँजीवाद के इस संकट को हल करने के लिये फासिस्ट सत्ता में पहुँचे हैं. ऐसे में, शिक्षा में गैर-बराबरी के मुद्दे के साथ पूरे समाज को तार्किक, वैज्ञानिक और जनवादी चेतना से लैस करने का एक जरूरी कार्यभार अभासिअमं के सामने खड़ा होता है. फासिस्ट समान शिक्षा व्यवस्था के सबसे बड़े दुश्मन हैं, वे हर तरह की गैर-बराबरी बरक़रार रखना चाहते हैं और यही वजह है कि वे शिक्षा में गैर-बराबरी के खिलाफ हर तरह के आन्दोलनों को महत्वहीन समझते हैं और उन्हें कमजोर करने की नापाक कोशिश करते हैं. वैश्विक बाज़ार के लिये 'एकल खिडकी' खोलने या फिर जनता का ध्यान भटकाने के अलावा केंद्रीकरण और साम्प्रदायिकरण के इतर नकारात्मक उद्देश्य भी हैं. मसलन, केन्द्र सरकार द्वारा मेडिकल की पढाई के दाखिले के लिये लागू किया गया केंद्रीकृत अखिल भारत स्तरीय परीक्षा नीट(NEET) का मामला है. इस परीक्षा का घोषित लक्ष्य मूल्यांकन और चयन में पूरे देश में एक मानकीकृत मापदंड लागू करना है. ये सीधे-सीधे राज्यों में बहुस्तरीय स्कूली व्यवस्था में मौजूद आपसी गैर-बराबरियों की अनदेखी करता है. यह मानकीकृत मापदंड सिर्फ दाखिले के लिये नहीं है, बल्कि इस देश में सक्रिय कॉरपोरेट निवेशकों व बाज़ार की ज़रूरते पूरी करने के लिये है जो इसी के बूते फलते-फूलते हैं- चाहे वे डॉक्टर हों, दवाएँ हों या चिकित्सीय साजो-सामान. इसके अलावा मानकीकरण से कोचिंग उद्योग का बाज़ार भी बड़ा होता है. नतीज़तन, देश के 85% युवा जो दमित-शोषित जातियों और वर्गों से आते हैं, उनके लिये मेडिकल की पढ़ाई के रास्ते बंद हो जायेंगे. कोचिंग उद्योग की बात करते समय एक बात की चर्चा यहाँ समीचीन लगती है. 02 अक्टूबर गाँधी जयंती के अवसर पर कई अखबार के पूरे-के-पूरे पन्ने कोचिंग संस्थानों के इश्तेहारों से भरे थे और इसके साथ ही , दिल्ली विश्वविद्यालय के सात महाविद्यालयों में कट-ऑफ सौ फीसदी दिखाया गया था. आज की अन्कस्फिति(marks inflation) की कल्पना क्या गाँधी ने कभी की होगी, क्या उन्हें निनान्यवे फीसदी अंक स्कूली शिक्षा के दरम्यान कभी मिले होंगे? विश्वविद्यालयों के सौ फीसदी कट-ऑफ कोचिंग संस्कृति को समृद्ध करते हैं. गाँधी की 'नई तालीम' के नाम पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कौशल प्रशिक्षण का नायाब प्रयोग हो रहा है. 'नई तालीम' के शिक्षा शास्त्रीय

संदर्भ को धूमिल करने की कोशिशें लगातार होती रही हैं. इसके शिक्षा शास्त्र का मतलब पढ़ाने के तरीके या सीखने-सिखाने की प्रक्रिया या अन्य कोई सुविधाजनक या बाजारवादी प्रारूप नहीं है. यहाँ शिक्षा शास्त्र का उपयोग शिक्षा को निरुपित करने के लिये किया जाता है जो आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक भौतिकवादी हकीकतों से द्वंद्वात्मक रुप में पैदा होती है और इस प्रक्रिया में हकीकतों को बदलने की जगह नहीं होती. अपने इस दार्शनिक ढांचे के कारण ही 'नई तालीम' इसे कमजोर या विकृत करने के सभी प्रयासों की खिलाफत करता है और कतई एक स्कीम या टेकनिक के रुप में इसके इस्तेमाल की इजाजत नहीं देता. शिक्षकों द्वारा उत्पादन के अनुभव को प्रासंगिक सन्दर्भों से जोड़ कर शिक्षार्थियों को गहन चिंतन, सवाल करने, विश्लेषण करने, खोज करने और निर्माण करने की ओर ले जाने की अद्भूत क्षमता नई तालीम के शिक्षण शास्त्र में है. आज नई तालीम के हवाले नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति द्वारा तालीम को महज कौशल प्रशिक्षण तक संकुचित करने और चोर दरवाजे से असंगठित क्षेत्र जिसमें तिरानवे फीसदी उत्पादक श्रम लगा हुआ है, को अकुशल बनाने की चाल को बेनकाब करने की ज़रूरत है. कौशल प्रशिक्षण के नाम पर बच्चों को बाल श्रम की ओर धकेलने की कोशिश हो रही है जिसका रास्ता श्रम कानून 2016 में संशोधन करके खोला जा चुका है. इस तरह ग्यारह साल के पचासी फीसदी बच्चों के बचपन की हत्या की जा रही है.

शिक्षा में गैर-बराबरी के बीच हम कोरोना महामारी द्वारा उत्पन्न सीखने-सिखाने की गैर-बराबरी को कैसे भूल सकते हैं. इस पर एक संक्षिप्त रिपोर्ट इस अंक में मौजूद है. अनगिनत प्रयोगों, मिथ्या प्रचारों और आन्दोलनों के जरिए फासिस्टों ने अपने प्रभाव में एक बहुत बड़ी आबादी को ले लिया है. आर. एस.एस द्वारा संचालित सरस्वती शिशु मंदिर, विश्व हिन्दू परिषद द्वारा संचालित एकल अभियान जैसी संस्थाएं बचपन से ही बच्चों के दिमाग में जहर घोलने का काम कर रही हैं. पूरे देश में लगभग अठारह हज़ार सरस्वती शिशु मंदिरों का संचालन होता है. पूँजीवादी विकास अपनी स्वाभाविक गति से ग्रामीण और शहरी निम्न पूंजीपति वर्ग और मध्यम वर्ग की एक आबादी को उजाड़कर असुरक्षा और अनिश्चितता की ओर ले जाता है. असुरक्षा और अनिश्चितता की स्थिति में इस वर्ग में प्रतिक्रियावाद की ज़मीन तैयार होती है. यही कारण है कि तंत्र द्वारा खुद सरकारी शैक्षणिक संस्थानों को खोखला और जर्जर किया जाता है और फिर इन्हें बेमानी और मृतप्राय बताकर निजीकरण का रास्ता खोला जाता है. अतएव, समान शिक्षा व्यवस्था की लड़ाई को नए सिरे से पुनर्जागरण और प्रबोधन की मुहिम के जरिए तेज करना है.

सार्वजनिक धन पर आधारित जन-केंद्रित एवं लोकतांत्रिक ढांचे में संचालित समतामूलक और विविधतापूर्ण गुणवत्ता की स्कूली व उच्च शिक्षा व्यवस्था खड़ी करने की

लड़ाई को और मज़बूत करने की ज़रूरत होगी. अभासिअमं की कोशिश होगी कि हरेक राज्य में, अलग-अलग भौगोलिक-सांस्कृतिक इलाकों की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थिति के मद्देनज़र राज्य के संघर्षरत संगठनों के बीच समन्वय विकसित करने में मदद करे . भारत में केजी से पीजी तक पूरी तरह मुफ्त व सरकार द्वारा वित्त पोषित समान शिक्षा व्यवस्था के निर्माण के लिये और शिक्षा पर किये जा रहे बाज़ारीकरण व साम्प्रदायिकरण के दोहरे हमलों एवं गहरी पैठ बनाए जाति व पितृसत्ता के दमनकारी सामाजिक ढांचे के खिलाफ लंबी लड़ाई के लिये जनमानस को तैयार करने के लिये पाश को याद किये बगैर नहीं रहा जा सकता:

और हम लड़ेंगे साथी

हम लड़ेंगे

कि लड़े बगैर कुछ नहीं मिलता

हम लड़ेंगे

कि अब तक लड़े क्यों नहीं

हम लड़ेंगे

अपनी सजा कबूलने के लिये

लड़ते हुए जो मर गए

उनकी याद जिन्दा रखने के लिये

हम लड़ेंगे.

****

FORM IV

1. Place of publication: 11-4-169/1/A, Flat no 306, Pleasant Apartments, Red Hills, Lakadikapool, Khairatabad, Hyderabad 500004
2. Periodicity of its publication: Quarterly
3. Printer's Name: Donkada Ramesh Patnaik
   Nationality: Indian
   Address: 11-4-169/1/A, Flat no 306, Pleasant Apartments, Red Hills, Lakadikapool, Khairatabad, Hyderabad 500004
4. Publisher's Name: Donkada Ramesh Patnaik
   Nationality: Indian
   Address: 11-4-169/1/A, Flat no 306, Pleasant Apartments, Red Hills, Lakadikapool, Khairatabad, Hyderabad 500004
5. Editor's Name: Donkada Ramesh Patnaik
   Nationality: Indian
   Address: 11-4-169/1/A, Flat no 306, Pleasant Apartments, Red Hills, Lakadikapool, Khairatabad, Hyderabad 500004
6. Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital: None

I, Donkada Ramesh Patnaik, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Date: 20 March Donkada Ramesh Patnaik

दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा महिला दलित लेखकों के दुर्भावनापूर्ण सेंसरशिप के खिलाफ

- डॉ. सचिन निर्मला नारायणन

दिल्ली विश्वविद्यालय प्रशासन ने अपनी अंग्रेजी पाठ्यक्रम समिति की मूल सिफारिशों को ख़ारिज करते हुए तीन दिग्गज ज्ञानपीठ और मैग्सेसे पुरस्कार से सम्मानित महिला लेखकों को अंग्रेजी साहित्य स्नातक प्रतिष्ठा पाठ्यक्रम से बाहर कर दिया है. ये दिग्गज महिला लेखक हैं महाश्वेता देवी(बंगाली), तमिल दलित लेखक बामा और सुकिर्थरानी. बिना किसी अकादमिक औचित्य के इस दुर्भावनापूर्ण सेंसरशिप ने दिल्ली विश्वविद्यालय की संस्थागत अखंडता और अकादमिक कद को चकनाचूर कर दिया है. यह विश्वविद्यालय की अकादमिक आज़ादी, इंसानियत और इंसाफ के लिये बेख़ौफ़ आलोचनात्मक संघर्ष का घोर अपमान है. यह सेसरशिप अंतिम वर्ष की कक्षाओं के शुरु होने के एक महीने के बाद हुई. यह कठोर कार्रवाई तब हुई जब लॉकडाउन में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया सीमित दायरे यानि ऑनलाइन में चल रही थी. यह कठोर उदासीनता सर्वाधिक चिंताजनक है. 2019 से पाठ्यक्रम को असंगत और अतार्किक तरीके से अनुमोदन देने का सिलसिला जारी है. यह शर्मनाक सेंसरशिप इसी का परिणाम है. कोई भी प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय तीन साल की अवधि के कोर्स में टुकड़ों-टुकड़ों में पाठ्यक्रम को मंजूरी नहीं देता, जैसा कि दिल्ली विश्वविद्यालय के मामले में किया गया है. इस विश्वविद्यालय ने 2019 में पहले दो सेमेस्टर, 2020 में फिर दो सेमेस्टर और 2021 में सेमेस्टर के हिसाब से टुकड़ों में पाठ्यक्रम को मंजूरी दी. इस तरह टुकड़ों में मंजूरी देने का रिवाज़ सिर्फ अंग्रेजी, इतिहास, समाज शास्त्र और राजनीति विज्ञान में है, जबकि परिणाम-प्राप्ति आधारित पाठ्यचर्या की रुपरेखा अन्य सभी 80 से अधिक विभागों के पाठ्यक्रम के संबंध में एक बार में अनुमोदित कर दिया गया. इन चार विषयों के पाठ्यक्रम को दक्षिणपंथी हिन्दुत्ववादी ताक़तों द्वारा निशाने पर लिया गया था. इन चार विषयों के पाठ्यक्रम में अहम और विवेचनात्मक विषय-वस्तु थे जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसके सहयोगियों द्वारा बहुसंख्यक साम्प्रदायिक सहमति पर सवाल उठाते थे. यह समेकित लक्ष्य संघियों के लिये असुविधाजनक आवाज़ों को बाहर करने के लिये निहित राजनैतिक एजेंडों को उजागर करता है. इसे सत्ता की विचारधारा को खुश करने और मज़बूत बनाने की कोशिश के रुप में समझने की ज़रूरत है.

राजनीतिक आकाओं के एजेंडे को लागू करने के लिये दिल्ली विश्वविद्यालय प्रशासन द्वारा कार्यकारी परिषद में अकादमिक परिषद के ऊपर उच्च स्तरीय कमिटि के रुप में ओवरसाईट कमिटि का गठन किया गया, जबकि दिल्ली विश्वविद्यालय अधिनियम, 1922 में अकादमिक मामलों में सर्वोच्च निर्णय लेनेवाली संस्था के रुप में अकादमिक परिषद की परिकल्पना की गयी थी. अकादमिक परिषद के ऊपर एक अधिसंरचना

के रुप में ओवरसाईट कमिटि के गठन के समय भी आपत्ति की गयी थी, लेकिन विश्वविद्यालय प्रशासन ने इसे नज़र अंदाज कर दिया. इसने प्रक्रियात्मक वैद्यता और शैक्षणिक अखंडता से समझौता किया. सीधे शब्दों में कहें तो अकादमिक कमिटि के ऊपर कोई भी कमिटि विश्वविद्यालय के कार्यों और विधियों में प्रावधानित नहीं है, फिर ओवरसाईट कमिटि को अकादमिक सेंसरशिप, विकृति और बर्बरता के गंभीर कार्यों को करने की अनुमति कैसे हो सकती है?

खास मकसद से बनाई गयी कुछ लोगों की कमिटी को विविध अकादमिक परिस्थितियों में काम करने की क़ाबलियत नहीं होती. पाठ्यक्रमों की समीक्षा की अक्षमता के बावजूद ओवरसाईट कमिटि के सदस्यों ने उलट- फेर करने की साजिश की. भौतिकी से सम्बंधित व्यक्ति ओवरसाईट कमिटि के सदस्य के रुप में साहित्य या अन्य सामाजिक विज्ञान के विषयों के साथ शायद ही इंसाफ कर सकता है. इसी प्रकार ओवरसाईट कमिटि के अन्य सदस्यों में भी साहित्य और अन्य विषयों के साथ न्याय करने की क़ाबलियत नहीं थी. बावजूद इसके, अंग्रेजी के दलित विभागाध्यक्ष को गंभीर दबाव में लेकर मौलिक पाठ्यक्रम में तब्दीली की गयी.

महाश्वेता देवी की कहानी 'द्रौपदी' महिलाओं के जीवंत अनुभव और किसी भी प्रकार की राज्यपोषित हिंसा और शारीरिक उल्लंघन के प्रतिरोध को केंद्रित करने के बुनियादी महत्व के कारण यह यूजीसी मॉडल पाठ्यक्रम का हिस्सा है और इसके बाद अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक समुदाय और भारत के कई अन्य विश्वविद्यालयों में व्यापक रुप में पढ़ाया जाता है. यह सब अंग्रेजी में इसके प्रकाशन की वज़ह से हुआ है. राजनीतिक पितृसत्तात्मक राज्य द्वारा द्रौपदी पर की गयी क्रूर हिंसा के बाद, कहानी में सत्ताईस वर्षीय आदिवासी महिला विद्रोही द्रौपदी मेजेण उनकी अदम्य साहस और हँसी है. अब यह पुष्टि हो गयी है कि वह कालातीत है और कहानी में सेना नायक के साथ-साथ दिल्ली विश्वविद्यालय प्रशासन और उनके आकाओं को डर से कँपाना जारी रखती है:

द्रौपदी का काला शरीर और भी करीब आता है. वह एक अदम्य हँसी के साथ कांपती है जिसे सेनानायक आसानी से नहीं समझ सकते. जैसे ही वह हँसने लगाती है, उसके कटे होंठों से खून बहने लगता है. द्रौपदी अपनी हथेली पर लगे खून को पोंछती है और ऐसी भयानक आवाज़ में बोलती है जो आकाश को चीरता हुआ उसके उच्छ्वास के समान तेज है. कपड़ों का क्या उपयोग है? तुम मेरे कपड़े उतार सकते हो, लेकिन तुम मुझे फिर से कपड़े कैसे पहना सकते हो? क्या तुम पुरुष हो?

वह चारों ओर देखती है और सेनानायक की सफ़ेद कमीज खूनी खखार थूकने के लिये चुनती है और वह कहती है कि वहाँ कोई आदमी नहीं है जिससे उसे शर्मिंदा होना चाहिए. वह कहती है: मैं तुम्हें अपना कपड़ा मुझ पर डालने नहीं दूँगी. तुम और क्या कर सकते हो? आओ, मुझ पर ज़वाबी हमला करो. चलो, ज़वाबी हमला करो? द्रौपदी अपने कटे हुए दो स्तनों से सेनानायक को धक्का देती है और पहली बार सेनानायक निहत्थे लक्ष्य के सामने खड़े होने से डरता है, बहुत डरता है.

ओवरसाईट कमिटि ने न सिर्फ 'द्रौपदी' को सिलेबस से ख़ारिज किया, बल्कि उसी लेखक की एक और कहानी को हटा दिया. इस प्रकार, एक महान लेखक, महिलाओं की चैम्पियन और हाशिए पर रहनेवाली महिलाओं की हमदर्द को निर्मम सेंसरशिप के जरिए पाठ्यक्रम से हटा दिया गया. इसी ओवरसाईट कमिटि ने दो महान पुरस्कार विजेता तमिल दलित महिला लेखकों बामा और सुकिर्थरानी को भी हटा दिया, जिसे उत्पीडन के खिलाफ आवाज़ों को चुप कराने के प्रयास के अलावा और किसी रुप में नहीं देखा जा सकता. बामा की आत्मकथात्मक रचना 'संगति' अपने समाज में जाति और लिंग उत्पीडन को शक्तिशाली रुप से उजागर करती है कि कैसे दलितों के बीच भी उत्पीडन जारी रहता है.

सुकिर्थरानी की दो कविताएँ 'कैमारु' और 'इन उटल' ('Debt' और 'My Body') हाथ से मैला ढोने की घिनौनी परम्परा और नारी और प्रकृति दोनों के दमनकारी शोषण की भौतिकता का स्पष्ट विरोध करती हैं. उनकी कविता 'कैमारु' का अंग्रेजी में 'Debt' शीर्षक से वसंत सूर्य द्वारा अनुवाद किया गया है. यह कविता हाथ से मैला ढोने से उत्पन्न आक्रोश की एक शक्तिशाली अभिव्यक्ति है, जातिगत संरचना का नग्न चित्रण है और जातिगत हीनता के आगोश में जकडन का संवेदनशील चित्रण है.

राज्य द्वारा हिंसा को खत्म करने के बजाये मैला ढोने, बलात्कार, जाति और लिंग उत्पीडन-जैसी बुराईयों के बारे में हमें शिक्षित और संवेदनशील बनानेवाली रचनाओं को दिल्ली विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम से निकल दिया गया है. तथ्यों के आधार पर यह कहना मौजू है कि परिणाम-प्राप्ति आधारित पाठ्यचर्या की रुपरेखा विश्वविद्यालय के शिक्षकों द्वारा लोकतांत्रिक रुप से गठित पाठ्यक्रम समिति के माध्यम से दो साल (2017से 2019) की अवधि में तैयार किया गया था. इसे एक कठोर विशेषज्ञ जाँच और सार्वजनिक प्रक्रिया से गुजरना पड़ा और इसके बाद इसे विश्वविद्यालय की वैधानिक प्रक्रिया के अनुमोदन के लिये प्रस्तुत किया गया. इन सारी प्रक्रियाओं के बावजूद, अंतिम समय में अकादमिक हत्या के इरादे से ओवरसाईट कमिटि को कार्रवाई में लगाया गया. पांचवें सेमेस्टर की कक्षाएँ 20 जुलाई से शुरु हुईं . कक्षाओं के शुरु होने के चालीस दिन बाद भी विश्वविद्यालय ने अपने गैर-जिम्मेदाराना हरकत के साथ पाठ्यक्रम को अंतिम रुप नहीं दिया महान लेखकों की आवाज़ों को बंद करने के इरादे से.

विश्वविद्यालय के अधिनियम का 26 निर्वाचित अकादमिक परिषद के सदस्यों में से 15 ने विरोध किया था और जब से यह मुद्दा सार्वजनिक हुआ है, तब से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हजारों विद्वानों द्वारा इसकी निंदा की जा रही है.

हमारे समाज में लिंग और यौन उत्पीडन पर सवाल उठानेवाली शक्तिशाली महिला आवाज़ों को सेंसर करना विशिष्ट पितृसत्तात्मक अधिपत्य को दर्शाता है. इन आवाज़ों को खत्म करके जातिगत उत्पीडन को ढकने की कोशिशें हमारे संवैधानिक संकल्प को ही कमजोर करेंगी. विश्वविद्यालय ने अपनी बाद की प्रेस विज्ञप्ति में इन लेखकों के हटाने के सही कारणों को स्वीकार किया है. आहत भावनाओं की बात करते हुए दिल्ली विश्वविद्यालय के कुल सचिव बेसोचे-समझे इस सत्य का इज़हार करते हैं कि पाठ्यक्रम से इन लेखकों को हटाना कोई

अकादमिक विवेक नहीं था, बल्कि विश्वविद्यालय प्रशासन का यह एक राजनैतिक विचार था. अपनी दयनीय अज्ञानता में, व्यापक हंगामें के सामने अनिश्चितकालीन अकादमिक हत्या का बचाव करने की अपनी दौड़ में दिल्ली विश्वविद्यालय प्रशासन सार्वजनिक रुप से आरोप लगा रहा है कि यह सरकार जाति उत्पीड़तों और बलात्कारियों की आहत भावनाओं का का प्रतिनिधित्व कर रही है, जिनके खिलाफ ये शक्तिशाली लेखक और उनकी रचनाएँ बोलती हैं. इसी वज़ह से उन्हें पाठ्यक्रम से हटा दिया गया है. क्या उस समय की सरकार किसी लोक प्रशासन के इस तुच्छ दलील को स्वीकार करेगी?

इस सरकार की नई शिक्षा नीति की खिलाफत करते हुए महामारी के बहाने जबरन ऑनलाइन शिक्षा की ओर धकेलने के कुत्सित प्रयासों की जगह हम लोकतांत्रिक, न्यायसंगत और सार्वभौमिक शिक्षा की मांग करते हैं. हम दृढता के साथ एकजुटता जाहिर करते हुए प्रतिबंधित लेखक की आवाज़ में आवाज़ मिलाते हुए कहना चाहते हैं: जितना अधिक तुम मुझे सीमित करोगे, मैं उतना ही अधिक फैलूँगा.

(डॉ. सचिन निर्मला नारायणन दिल्ली विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक हैं.)

****

शिक्षा की परिवर्तनकामी भूमिका: एक शिक्षिका के कक्षाई संवाद का प्रेरक अनुभव

-फ़िरोज़ अहमद

हममें से बहुत से शिक्षक , शिक्षा की प्रगतिशील समझ रखने के बावजूद , अक़सर ख़ुद को एक निराशा की स्थिति में पाते हैं। इस ज़हनी हालत की वजह व्यक्तिगत ज़िंदगी में हो रहे उतार-चढ़ाव तो होते ही हैं , शिक्षा व्यवस्था व व्यापक समाज में पसर रही जन-विरोधी राजनीति भी होती है। राजनैतिक रूप से अधिक प्रतिबद्ध साथियों को यक़ीनन शिक्षा-विरोधी राजनैतिक जकड़बंदी ज़्यादा परेशान करती है। हमारे देश में शिक्षा पर हमेशा से ही एक संकीर्ण सांस्कृतिक वर्चस्व क़ायम रहा है। इसके मूल में ऐतिहासिक रूप से मुट्ठीभर लोगों का वो राजनैतिक-सामाजिक-आर्थिक प्रभुत्व रहा है जिसने अपनी छाप शिक्षा पर भी छोड़ी है। हालाँकि, लोकायत, चार्वाक, बुद्ध, जैन, नानक, कबीर से होते हुए आधुनिक काल में सावित्रीबाई फुले, डॉक्टर अंबेडकर आदि तक लोकतांत्रिक व्यवहार , खुली ज़हनियत, प्रतिरोध और नवनिर्माण की एक प्रखर धारा भी हमारे साथ रही है , फिर भी औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में कुल मिलाकर रूढ़िवादी संस्कृति ही हावी रही है। पिछले कुछ समय, ख़ासतौर से 2014 में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) के केंद्र में सत्तारूढ़ होने के बाद से हमारे देश की इस तथाकथित

मुख्यधारा की सांस्कृतिक जकड़न को राज्य से संरक्षण ही नहीं, सीधे ताक़त भी हासिल हुई है। जहाँ शिक्षा को निर्धारित व प्रभावित करने वाली सरकारी नीतियाँ पहले से कहीं ज़्यादा और तेज़ी से कमज़ोर तबक़ों तथा इल्म के प्रति ख़ूँख़ार होती गई हैं , वहीं नफ़रत के हिमायतियों के हौसले बुलंद हुए हैं। इसका सीधा असर इंसाफ़ और इल्म के हक़ में रुझान रखने वाले शिक्षकों व विद्यार्थियों के मनोबल पर भी पड़ा है , हालाँकि यहाँ भी प्रतिरोध , ख़ासतौर से सांगठनिक शक्लों में, मज़बूती से जारी रहा है।

इस संदर्भ के मद्देनज़र अपने-अपने स्तर पर अपनी कक्षाओं, संस्थानों में जूझ रहे शिक्षकों और विद्यार्थियों की अहम दख़लों और उनके साहसी-विवेकपूर्ण किरदार को दर्ज करना भी ज़रूरी है।

इसी कड़ी में पेश है एक शिक्षिका का हौसला और जोश बढ़ाने वाला एक कक्षाई अनुभव। ये शिक्षिका पिछले लगभग चार वर्षों से दिल्ली विश्वविद्यालय के एक कॉलेज में स्नातक स्तर पर एक कोर्स में पढ़ा रही हैं। इनका अपना समाजी व तालीमी सफ़र चुनौतियों तथा संघर्ष के उस रास्ते से होकर गुज़रा है जिससे हमारे देश की बहुसंख्यक मेहनतकश आवाम को, उनमें भी ख़ासतौर से महिलाओं को, होकर गुज़रना पड़ता है।

जिस स्नातक स्तर के कोर्स में वो पढ़ा रही हैं , उसमें एक पर्चा सामाजिक विज्ञान का है। इसमें छात्राओं को भारत की विविध तथा विषम राजनैतिक-सामाजिक सच्चाई से परिचित कराने के अलावा, शिक्षा से इन आयामों के संबंध के बारे में पढ़ाया जाता है। ज़ाहिर है कि ऐसे कोर्स की रूपरेखा भी तभी तक संभव है जब तक इन्हें तैयार करने वाले शिक्षक न सिर्फ़ ख़ुद एक प्रगतिशील समझ रखते हों, बल्कि कोर्सों को तैयार करने वाली अकादमिक इकाइयाँ व प्रक्रियाएँ सत्ता के अधीन न होकर स्वायत्त हों। केंद्र सरकार के फ़ासीवादी चरित्र और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के एजेंडा के संदर्भ में ये अंदाज़ा लगाना ग़लत नहीं होगा कि आलोचनात्मक नज़रिए को प्रेरित करने वाले ऐसे कोर्सों की पाठ्यचर्या को इस क़दर उदार और संवेदनशील नहीं रहने दिया जाएगा।

लगभग चार साल पहले अपनी प्रथम वर्ष की छात्राओं को इस पेपर के तहत राष्ट्रवाद का विषय पढ़ाते हुए उन्होंने आरएसएस की राष्ट्र की अवधारणा तथा उसके राष्ट्रवाद के दर्शन पर कक्षा का ध्यान खींचा। आरएसएस के दर्शन में निहित नफ़रत व उससे उपजने वाली नागरिकता की संकुचित अवधारणा से असहमति रखते हुए, वो ख़ुद भी समझना चाहती थीं कि इस स्तर की छात्राएँ इस बेदख़ली को पहचान पाती हैं या नहीं तथा इसे कैसे देखती हैं। इस संदर्भ में वो कक्षा में रोमिला थापर एवं अन्य की संपादित किताब 'ऑन नेशनलिज़्म' में शामिल एक लेख पर चर्चा कर रही थीं। इस दौरान कक्षा में विभिन्न दलों/संगठनों/संस्थाओं की 'राष्ट्र' की कल्पना पर बात चल रही है। इस चर्चा के दौरान उनकी कक्षा की एक छात्रा ने उस लेख की व्याख्या से असहमति ज़ाहिर की। उसका कहना था कि अपने पिता की आरएसएस की पृष्ठभूमि के मद्देनज़र वो समझती है कि आरएसएस के बारे में लेख की आलोचना ग़लत है। छात्रा का कहना था कि उसके घर में आरएसएस के दस्तावेज़ हैं जिनके आधार पर वो कह

सकती है कि ये संस्था कहीं से भी दूसरों के साथ भेदभाव या उनके लिए दोयम दर्जे की नागरिकता की वकालत नहीं करती है। शिक्षिका ने न सिर्फ़ छात्रा को इस व्याख्या के विरोध में अपनी बात खुलकर कहने को आमंत्रित किया , बल्कि उसे उस दस्तावेज़ को कक्षा में लाने के लिए भी प्रोत्साहित किया जिसके आधार पर वो अपनी असहमति को सबके सामने जायज़ ठहरा सकती थी। अगली कक्षा में जब छात्रा आरएसएस का उक्त दस्तावेज़ कक्षा में लाई तो शिक्षिका ने उसे उस दस्तावेज़ को कक्षा के सामने ऊँची आवाज़ में पढ़ने के लिए आमंत्रित किया, ताकि सब छात्राएँ उसे सुन व समझ कर उसपर आपस में बात भी कर सकें। जब छात्रा ने उसे पढ़ना शुरु किया तो एक-दो वाक्यों के बाद वो ख़ुद ही ठिठक कर रुक गई। शिक्षिका ने उसके रुकने का कारण पूछा तो उसने कक्षा में मौजूद मुस्लिम पृष्ठभूमि की सहपाठिनों का नाम लेते हुए कहा कि जब दस्तावेज़ में भारत के लोगों के नाम पर सिर्फ़ 'हम हिन्दू' या 'हम हिंदुओं' को संबोधित किया जा रहा है , तब उसने ख़ुद से ही महसूस किया कि दस्तावेज़ राष्ट्र की कल्पना में सभी को शामिल नहीं कर रहा है और इसके मद्देनज़र वो अपनी उन सहपाठिनों के सामने इसे आगे नहीं पढ़ सकती है। छात्रा का इसके बाद का बदला राजनैतिक नज़रिया (जिसे शिक्षिका ने आने वाले समय में महसूस किया) इस बात का सबूत है कि यह महज़ एक विनम्र संकोच का नहीं , बल्कि उभरती चेतना की संवेदनशीलता का इंकार था जिसे संवाद में यक़ीन रखने वाली एक ईमानदार शिक्षिका के शिक्षणशास्त्र ने संभव बनाया था।

प्रसंग यहीं ख़त्म नहीं होता है। किसी भी असल शैक्षिक अनुभव की तरह यह एक अंतद्वंद्व के रूप में जारी रहता है। छात्रा जब घर पहुँच कर अपने पिता से अपनी नई नज़र को साझा करते हुए उनसे आरएसएस/दस्तावेज़ के बारे में सवाल करती है , तो उनकी प्रतिक्रिया पितृसत्ता और दोहरी शिक्षा व्यवस्था के रिश्ते को उघाड़ कर रख देती है। वो अपनी बेटी की उभरती समझ पर खीझकर कहते हैं कि इसीलिए वो उसकी नियमित उच्च-शिक्षा के पक्ष में नहीं थे और अगर वो दूरस्थ माध्यम से पढ़ती तो सवाल करना सिखाने वाली ऐसी 'ग़लत' शिक्षा से तो बची रहती! बेटी और पिता के इस विवाद में सुलह का बीच का रास्ता ढूँढती हुई माँ छात्रा को सलाह देती हैं कि उसे कॉलेज की पढ़ाई और घर-परिवार को मिलाना नहीं चाहिए , बल्कि उन्हें अलग-अलग रखना चाहिए! ज़ाहिर है कि उनकी यह सलाह पितृसत्ता के उनके अपने अनुभवों की सीख पर आधारित है जिसकी बिना पर वो अपनी बेटी को एक सीमित मायने में 'कामयाब' व 'सुरक्षित' देखना चाहती हैं। यह वो समझौता है जिसे आज़ादी और बराबरी के साझे स्त्रीवादी संघर्षों में लगी शिक्षिकाएँ और छात्राएँ मुक्तिकामी शिक्षा की ताक़त से लैस होकर चुनौती दे रही हैं।

दूसरी तरफ़, जहाँ ऑनलाइन माध्यम को कॉरपोरेट ताक़तों तथा राज्य द्वारा थोपा जा रहा है , वहीं ऐसे जीवंत कक्षाई अनुभव न सिर्फ़ ऑन-कैंपस व शिक्षकों-विद्यार्थियों की ज़ाहिर मौजूदगी में निहित अंतःक्रिया की संभावनाओं और गहराइयों को उजागर करते हैं , बल्कि ये इशारा भी करते हैं कि प्रत्यक्ष जीवंत अंतःक्रियाओं के बदले ऑनलाइन माध्यम का थोपा जाना आवाम व तालीम के ख़िलाफ़ एक साज़िश भी है। यह प्रसंग हमारे संस्थानों और कक्षाओं के संदर्भ में

विविधता के महत्व को भी बख़ूबी बयान करता है। हम कल्पना कर सकते हैं कि अगर उनकी कक्षा में विविध पृष्ठभूमियों की छात्राएँ नहीं होतीं , तो शायद उस वक़्त उक्त छात्रा को वह अहसास नहीं होता जो उसे उनकी मौजूदगी में दस्तावेज़ पढ़ते वक़्त हुआ। विविधता विषमता को तोड़ने का काम कर सकती है। हम सोच सकते हैं कि आज इल्म व विचार विरोधी राज्य की निगरानी के दौर में जब ऑनलाइन शिक्षा और कक्षाओं की रिकॉर्डिंग की मांग थोपी जा रही है, तब किसी गंभीर शिक्षक-शिक्षिका की स्वायत्तता किस तरह सीमित हो जाएगी। ऐसे में सामाजिक विज्ञान जैसे विषयों को पढ़ाने के अहम उद्देश्यों - जैसे, विद्यार्थियों में आलोचनात्मक चिंतन को प्रेरित करना , समाज की भेदभावकारी/बेदख़ल करने वाली प्रक्रियाओं को पहचानना सिखाना और इस तरह समाज को बदलने की राह दिखाना - और शिक्षा की परिवर्तनकामी भूमिका को लड़कर मिली थोड़ी-बहुत जगह भी ख़तरे में पड़ जाएगी। तालीम का अंतर्राष्ट्रीय इतिहास इस बात का गवाह है कि किसी भी फ़ासीवादी दौर में सरकार की दमनकारी निगरानी, समाज में उच्श्रृंखल होते हिंसक तत्वों और प्रशासन के रीढ़विहीन चरित्र के चलते शिक्षक-शिक्षिकाओं के लिए अपनी बौद्धिक ज़िम्मेदारी को खुलकर निभाना तथा अपने विद्यार्थियों से इंसाफ़ करना मुश्किल होता जाता है। ऐसे में , ऐसी तमाम शिक्षिकाएँ और छात्राएँ जो दमन , चुनौतियों व आशा-निराशा के उतार-चढ़ाव के बीच अपने-अपने स्तर पर तालीम को संवाद की एक खुली किताब की तरह बरत कर सिर्फ़ प्रतिरोध ही नहीं , बल्कि एक बेहतर और ख़ूबसूरत दुनिया का निर्माण भी कर रही हैं , बेशक हमें प्रेरणा देती हैं और तालीम के आंदोलन में जान भरती हैं।

[नोट: यह आलेख एक साथी शिक्षिका द्वारा व्यक्तिगत बातचीत में साझा किए गए उनके एक कक्षाई अनुभव को दर्ज करता है। उनके आग्रह पर उनकी पहचान उजागर नहीं की गई है ।]

(फ़िरोज़ अहमद अभाशिअमं की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य हैं.)

****

तालाबंद (लॉक्ड आउट): स्कूल शिक्षा पर आपातकालिक रपट

6 सितंबर 2021 को Locked Out : Emergency Report on School Education नाम से एक रपट जारी की गई जिसे 100 लोगों के ज़मीनी सहयोग से ज्याँ द्रेज़ , निराली बाखला, रीतिका खेरा व विपुल पाइक्रा की टीम ने तैयार किया था। रपट तैयार करने की प्रक्रिया के पहले चरण में 15 राज्यों व केंद्र-शासित प्रदेशों में कक्षा एक से आठ तक में नामाँकित बच्चों वाले 1362 घर-परिवारों के बीच सर्वे किया गया था। रपट स्कूलों की तालाबंदी के भयावह असर और ऑनलाइन पढ़ाई की हक़ीक़त को, विशेषकर वंचित वर्गों के संदर्भ में, बख़ूबी सामने लाती है। हालाँकि, रपट में 'आधारभूत साक्षरता व गणना की शिक्षा-विरोधी संकल्पना - जो स्कूलों को अधिगम व अधिगम को फिर महज़ पढ़ना-लिखना सीखने तक सीमित करके उसके नुक़सान (लर्निंग लॉस) को अन्य किसी भी आयाम व चिंता से ऊपर रखता है - का प्रभाव झलकता है, रपट में कुल मिलाकर शिक्षा में ग़ैर-बराबरी को लेकर व्यक्त की गई चिंता राजनैतिक ईमानदारी दर्शाती है। ऊपर वर्णित शंका को चिन्हित करते हुए, हम यहाँ इस रपट के चुनिंदा अंशों का अनुवाद साझा कर रहे हैं ताकि यह महत्वपूर्ण दस्तावेज़ हिंदीभाषी पाठकों तक पहुँच सके और तालाबंदी व ऑनलाइन पढ़ाई के धोखे को प्रमाण-सहित सामने रखते हुए शिक्षकों व अभिभावकों के बीच विमर्श को सही दिशा देने तथा जनदबाव बनाने के काम आए। मूल रपट के लिंक को नीचे संलग्न किया गया है।

तालाबंद (लॉक्ड आउट): स्कूल शिक्षा पर आपातकालिक रपट

लगभग 1400 वंचित परिवारों के बीच किया गया हालिया सर्वे पिछले डेढ़ साल की लंबी स्कूलबंदी के विनाशकारी नतीजे सामने लाता है। इस सैंपल में ग्रामीण इलाक़ों के महज़ 8% बच्चे नियमित रूप से ऑनलाइन पढ़ाई कर रहे हैं और 37% बिलकुल नहीं पढ़ रहे हैं। अधिकतर माता-पिता चाहते हैं कि स्कूल जितनी जल्दी मुमकिन हो, खोले जाएँ। (यह सर्वे अगस्त 2015 के दौरान 15 राज्यों व केंद्र शासित प्रदेशों में किया गया था।)

ऑनलाइन शिक्षा की मनगढ़ंत कहानी

यह सर्वे साफ़ करता है कि ऑनलाइन शिक्षा की पहुँच बहुत सीमित है: नियमित रूप से ऑनलाइन पढ़ाई करने वाले बच्चों का अनुपात शहरी व ग्रामीण इलाक़ों में क्रमशः 24% व 8% था। इसका एक कारण यह है कि सैंपल में शामिल कई परिवारों - गाँव के लगभग आधे - के स्मार्ट फ़ोन नहीं है। मगर यह तो पहली बाधा है: जिन परिवारों

के पास स्मार्ट फ़ोन है उनमें से भी नियमित रूप से ऑनलाइन पढ़ाई करने वाले बच्चों का अनुपात शहरों में 31% व गाँवों में 15% है। परिवार के कामकाजी बड़ों द्वारा इस्तेमाल किए जाने के चलते ख़ासतौर से छोटी उम्र के बच्चों के लिए स्मार्टफ़ोन उपलब्ध नहीं होते हैं ; फिर ख़राब नेटवर्क व डाटा के लिए पैसों की कमी से जुड़ी समस्याएँ भी हैं। ऐसे माता-पिता का अनुपात जिनको लगता था कि उनके बच्चे के पास पर्याप्त ऑनलाइन पहुँच थी शहरों में महज़ 23% व गाँवों में 8% था। एक बड़ी दिक़्क़त, ख़ासतौर से ग्रामीण इलाक़ों में, यह भी थी कि स्कूल ऑनलाइन सामग्री नहीं भेज रहे हैं , या अगर भेज भी रहे हैं तो माता-पिता को इसकी जानकारी नहीं है। वैसे

भी, कुछ बच्चे, ख़ासतौर से छोटी उम्र के , ऑनलाइन पढ़ाई नहीं समझ पाते हैं , या उन्हें ध्यान लगाने में मुश्किल होती है।

ऑफ़लाइन बच्चों के बीच नियमित पढ़ाई के बहुत कम सबूत मिले। इनकी बड़ी बहुसंख्या या तो पढ़ ही नहीं रही है, या कभी-कभार घर पर जैसे-तैसे पढ़ रही है। सर्वे के दौरान पाया गया कि गाँवों के ऑफ़लाइन बच्चों में से लगभग आधे बिलकुल नहीं पढ़ रहे थे।

शिक्षकों से दूर [होते बच्चे]

सर्वे से पूर्व के 30 दिनों में अधिकतर बच्चे (शहरी इलाक़ों में 51% व ग्रामीण में 58%) अपने शिक्षक से नहीं मिले थे। इसके बावजूद, कुछ शिक्षकों ने अपनी ड्यूटी के परे जाकर ऑफ़लाइन बच्चों की मदद की। सर्वे से प्रयत्नशील शिक्षकों की कई पहलें उजागर हुईं। कुछ ने खुले में , या किसी के घर में या यहाँ तक कि अपने घर में , छोटे समूह की कक्षाएँ लीं। कुछ ने पैसों की तंगी से जूझ रहे बच्चों के फ़ोन रीचार्ज किए या ऑनलाइन पढ़ाई के लिए उन्हें कुछ समय के लिए अपने फ़ोन दिए। अन्यों ने [अपनी क्लास से इतर] कुछ बच्चों को फ़ोन पर या उनके घर जाकर भी पढ़ाया। ये सब बेशक़ीमती प्रयास थे , मगर इनसे तालाबंद स्कूलों और क्लासरूम की रुकी कक्षाओं की भरपाई नहीं हो सकती।

अधिकतर माता-पिता का मानना था कि [स्कूल की] तालाबंदी के दौरान उनके बच्चे की पढ़ने-लिखने की क़ाबीलियत में गिरावट आई है। ऑनलाइन पढ़ने वाले शहरी बच्चों के माता-पिता में भी ऐसा महसूस करने वालों का अनुपात 65% था। पूरे सैंपल में मिलाकर सिर्फ़ 4% माता-पिता को लगा कि तालाबंदी के दौरान उनके बच्चे के पढ़ने-लिखने की क़ाबीलियत में सुधार हुआ है - जोकि [बढ़ती उम्र व कक्षा के साथ] एक सामान्य चीज़ होनी चाहिए थी।

हालात की नज़ाकत को समझने के लिए हम स्कूली बच्चों की साक्षरता दर की तुलना 2011 की जनगणना के इसी उम्र के बच्चों की साक्षरता के आँकड़ों से कर सकते हैं। जनगणना के आँकड़ों के अनुसार उस वक़्त 10-14 साल के समूह में औसत साक्षरता दर [सर्वे के सैंपल में शामिल राज्यों में], बिहार के 83% को छोड़कर, 88% से 98% थी; अखिल-भारत औसत 91% था। हम उम्मीद करेंगे कि दस साल बाद [यानी , आज] इस उम्र के बीच साक्षरता दर के आँकड़े का 90% से ऊपर होना सामान्य होगा। इसके विपरीत, हम देखते हैं कि इस सैंपल में 10-14 साल के स्कूली बच्चों में साक्षरता दर शहरी इलाक़ों में महज़ 74%, ग्रामीण इलाक़ों में 66% व ग्रामीण दलित तथा आदिवासी [पृष्ठभूमियों के] बच्चों में 61% तक ही है। यह फ़र्क़ इसलिए और भी चौंकाने वाला है क्योंकि जनगणना में साक्षरता की औपचारिक परिभाषा (किसी भी भाषा में समझ कर पढ़ने-लिखने की क्षमता) इस सर्वे में इस्तेमाल की गई परिभाषा से अधिक कठोर है। यह फ़र्क़ इतना अधिक है कि इसे सैंपल में शामिल बच्चों की वंचित पृष्ठभूमि के आधार पर समझा नहीं जा सकता है।

इसे इस तरह से देखा जा सकता है - सैंपल के ग्रामीण अनुसूचित जाति/जनजाति [पृष्ठभूमियों] के परिवारों के 10-14 साल के बच्चों में 'निरक्षरता दर' (39%) दस साल पहले इन्हीं राज्यों के इसी उम्र के बच्चों के 'निरक्षरता दर' (9%) से चार गुना से भी अधिक है। ये भयावह हालात [समाज में] स्थाई ग़ैर-बराबरी और [सरकार द्वारा की गई] एक एकतरफ़ा तालाबंदी का मिश्रित नतीजा हैं।

चाहे ऑनलाइन शिक्षा को देखें, या नियमित पढ़ाई को, या पढ़ने की क्षमता को, वंचित परिवारों में भी दलित व आदिवासी [पृष्ठभूमियों] के परिवारों के आँकड़े अन्यों की तुलना में और भी

चिंताजनक हैं। मिसाल की तौर पर, अन्य ग्रामीण बच्चों में 15% के मुक़ाबले केवल 4% अनुसूचित जाति/जनजाति [पृष्ठभूमियों के] ग्रामीण बच्चे नियमित ऑनलाइन पढ़ाई कर पा रहे हैं। 98% ग्रामीण अनुसूचित जाति/जनजाति [पृष्ठभूमियों] के माता-पिता चाहते हैं कि स्कूलों को जितनी जल्दी मुमकिन हो उतनी जल्दी खोला जाए।

सर्वे से स्कूली व्यवस्था में दलितों व आदिवासियों के ख़िलाफ़ होने वाले भेदभाव के कुछ हैरतअंगेज़ करने वाले प्रसंग भी उजागर हुए। मिसाल के लिए , झारखंड के लातेहार ज़िले के कुटमु गाँव में अधिकतर परिवार दलित व आदिवासी [पृष्ठभूमियों से] हैं, लेकिन शिक्षक गाँव के चंद [तथाकथित] उच्च-जाति परिवारों में से एक परिवार से है। इन परिवारों के कुछ सदस्यों ने सर्वे दल से खुलकर पूछा, "अगर ये [अनुसूचित जाति/जनजाति के] बच्चे शिक्षित हो जाएँगे तो हमारे खेतों में कौन काम करेगा?" शिक्षिका क़रीब के शहर में रहती हैं, अपनी सुविधानुसार स्कूल आती हैं और कक्षा में भी ज़्यादा मेहनत नहीं करतीं। इस गाँव के 20 दलित व आदिवासी [पृष्ठभूमियों के] बच्चों में से एक भी धाराप्रवाह नहीं पढ़ पा रहा था। उनके माता-पिता शिक्षिका के ग़ैर-ज़िम्मेदाराना व्यवहार के बारे में बेइंतहा शिकायत कर रहे थे, लेकिन वो इसके बारे में कुछ भी कर पाने में असमर्थ थे।

जब स्कूल खुलेंगे, बच्चे पाएँगे कि वो अपनी कक्षा की पाठ्यचर्या से 'तीन गुना' पीछे हैं। इस तीन गुना फ़ासले में (1) तालाबंदी के पूर्व का फ़र्क़, (2) तालाबंदी के दौरान साक्षरता व संबंधित क्षमताओं में आई गिरावट, तथा (3) इस बीच पाठ्यचर्या का लगातार आगे बढ़ते जाना शामिल है। उदाहरण लिए, तालाबंदी के पूर्व कक्षा 3 में पढ़ रही बच्ची, जोकि अपनी वंचित परिस्थिति की वजह से [उस वक़्त] कक्षा 2 के आगे की पाठ्यचर्या पर पकड़ नहीं बना पाई थी, [पढ़ाई छूट जाने के चलते] अब ख़ुद को कक्षा 1 के स्तर के नज़दीक पाएगी, जबकि आज वो कक्षा 5 में है! बेमेल परिस्थिति की इस विशाल खाई से निपटने के लिए पाठ्यचर्या व शिक्षणशास्त्र में महीनों नहीं बल्कि वर्षों की अवधि पर फैले बदलाव की दरकार है।

जबकि कुछ बच्चे मज़दूर बन गए हैं, अन्य ख़ालीपन, शारीरिक सक्रियता के अभाव, फ़ोन की लत, परिवार के तनावों तथा तालाबंदी के दूसरे दुष्प्रभावों से जूझ रहे हैं। उदाहरण के लिए , कुछ माता-पिता ने अपने बच्चों के अनुशासनहीन , आक्रामक और यहाँ तक कि हिंसक तक हो जाने की शिकायत की। अन्यों ने, ख़ासतौर से शहरों में, बच्चों के हर वक़्त घर पर होने को एक बोझ की तरह पाया, या अपने बच्चे के घर के बाहर की गतिविधियों व जान-पहचान को लेकर चिंता ज़ाहिर की। घर के बाहर काम करने वाली माताओं के लिए स्कूलों की तालाबंदी एक आफ़त है।

स्कूलों को फिर से खोलने की माँग

हमारे द्वारा इंटरव्यू किए गए अधिकतर अभिभावक चाहते हैं कि स्कूल जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी खुलें। शहरी इलाक़ों में एक छोटी संख्या (6%) को इसे लेकर कुछ हिचकिचाहट थी, या - कुछ मामलों में - विरोध भी। हालाँकि, ग्रामीण इलाक़ों में 97% तक अभिभावक स्कूलों को दोबारा खोलने के पक्ष में थे। जब हमने पूछा कि क्या वो चाहेंगे कि स्कूल फिर से खोले जाएँ , तो अधिकतर ने महसूस किया कि इसका जवाब तो स्वाभाविक था। जैसा कि एक अचंभित माँ ने कहा, "ये भी कोई पूछने वाली बात है?"

एक उभरती हुई आपदा

स्कूल अनिवार्य सेवा [देते] हैं। यह बुद्धिमानीपूर्ण ही कहा गया है कि इन्हें सबसे आख़ीर में बंद होना चाहिए और सबसे पहले खुलना चाहिए। भारत में इसके उलट ही हुआ है: 2020 की शुरुआत

में भारत में कोविड-19 के संकट के आने के फ़ौरन बाद ही पलक झपकाए बिना सभी स्कूलों को बंद कर दिया गया और इनमें से अधिकतर आज भी बंद हैं। जब स्कूल दोबारा खुले हैं तो ध्यान उच्च कक्षाओं पर रहा है , नाकि छोटे बच्चों पर जिन्हें अपने शिक्षकों की मदद की सबसे ज़्यादा ज़रूरत होती है। 17 महीनों तक ऑनलाइन शिक्षा के रुमाल से स्कूलों से बेदख़ली की लाश को ढका गया। इस ज़बरदस्त नाइंसाफ़ी पर इतने लंबे समय तक कोई सवाल नहीं खड़े किए जाना भारत के विशिष्ट लोकतंत्र का दोष सिद्ध करता है।

यह स्कूल सर्वे इस लंबी तालाबंदी - दुनिया की सबसे लंबी तालाबंदियों में से एक - द्वारा निर्मित प्रचंड विनाश का संकेत भर करता है। जैसा कि हमने देखा , अभिभावक ख़ुद इस विनाश से अनभिज्ञ नहीं हैं। उनमें से बहुतों ने अपनी मायूसी को इस तरह के शब्दों में बयाँ किया, "बच्चे का लाइफ़ तो ख़तम ही हो रहा है।"

इस नुक़सान की भरपाई करने में वर्षों का धैर्यपूर्वक काम लगेगा। स्कूलों को दोबारा खोलना तो , जिसके बारे में अभी बहस ही हो रही है , [इस दिशा में] महज़ पहला क़दम है। हक़ीक़त तो यह है कि कई राज्यों में तो इस पहले क़दम के लिए ज़रूरी तैयारी (जैसे , स्कूल भवनों की मरम्मत करना, सुरक्षा दिशा-निर्देश जारी करना, शिक्षकों को प्रशिक्षित [नियुक्त] करना, [बेदख़ल हो गए बच्चों को वापस लाने के लिए] नामाँकन अभियान चलाना) भी नदारद है। उसके बाद , महज़ एक वाजिब पाठ्यचर्या तक बच्चों की पकड़ बनाने के लिए ही नहीं , बल्कि उनकी मनोवैज्ञानिक, सामाजिक व पोषणयुक्त ख़ुशहाली लौटाने के लिए भी स्कूली व्यवस्था को एक लंबे संक्रमण काल से गुज़रना होगा। हालात देखकर तो यही लगता है कि स्कूलों के दोबारा खुलने पर व्यवस्था "सब कुछ सामान्य है" के पुराने ढर्रे की तरफ़ ही बढ़ेगी। यह आपदा को दावत देने वाला नुस्ख़ा है।

https://roadscholarz.net/wp-content/uploads/2021/09/LOCKED-OUT-Emergency-Report-on-School-Education-6-Sept-2021.pdf

(साभार: लोक शिक्षक मंच)

****

यूजीसी के 'ब्लेंडेड लर्निंग' के कॉन्सेप्ट नोट पर

अभाशिअमं की प्रतिक्रिया

यूजीसी ने अपनी वेबसाइट पर नई डिजिटल टेक्नोलॉजी पर आधारित एक चिंतन-परचा (कॉन्सेप्ट नोट) पोस्ट किया है, जिसमें ब्लेंडेड (मिश्रित) लर्निंग (बी एल), यानी पुराने और नए तरीकों को मिलाकर पढ़ाई का तरीका समझाया गया है। यह एनईपी 2020 को लागू करने की दिशा में एक कदम है। इसने टिप्पणियां आमंत्रित की हैं लेकिन इसका कोई उल्लेख नहीं है कि उन टिप्पणियों को कैसे शामिल या अस्वीकार किया जाएगा। इस दस्तावेज़ में बार-बार एनईपी 2020 का सोने की खान की तरह उल्लेख हुआ है। दस्तावेज़ की एक बड़ी नाकामी यह है कि यह उच्च शिक्षा की मौजूदा प्रणाली की कोई

आलोचना नहीं करता है. **बेहद असमान समाज में बेदखली बढ़ाने का एक तकनीकी 'सुधार'**
यूजीसी कॉन्सेप्ट नोट की भूमिका में मिश्रित शिक्षण को '... तालीम के डिजिटल उपकरणों को पारंपरिक कक्षा में आमने-सामने पढ़ने-पढ़ाने के साथ जोड़ने का शैक्षिक अभ्यास ' कहा गया है। कॉन्सेप्ट नोट सीखने-सिखाने में टेक्नोलॉजी की भूमिका को अति-रोमांटिक बनाकर पेश करता है , विशेष रूप से ऐसे समाज में जहां डिजिटल असमानताएं अधिक हैं और बुनियादी तकनीकी ढांचा सीमित है।

भूमिका में उल्लेख किया गया है कि 'एक सही मिश्रित सीखने के माहौल में, छात्र और शिक्षक दोनों को शारीरिक रूप से एक ही स्थान पर स्थित होना चाहिए' और फिर भी इसमें 'फ़्लिप क्लासरूम मॉडल' पर आगे कहा गया है कि 'छात्रों को अपने वक्त में क्लाउड-आधारित शिक्षण के माध्यम से डिजिटल शिक्षण सामग्री तक पहुंचने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। ' सुनने में यह एक अच्छा इरादा लग सकता है, लेकिन मुश्किल ये है कि तालीम के उच्चतम स्तरों पर भी भारत में विद्यार्थियों के पास क्लाउड-आधारित शिक्षण तक पहुंच ही नहीं है।

दस्तावेज़ में कही बात के विपरीत , 'कंप्यूटर साक्षरता' बी-एल के लिए एक पूर्व-शर्त है। जो लोग इसके साथ तैयार होकर आएंगे वे दौड़ में आगे बढ़ने वाले हैं और बाकी लोग पिछड़ जाएंगे। टेक्नोलॉजी वर्ग-असमानताओं को कायम रखती है और गरीब छात्रों को व्यवस्था से बाहर कर देती है। यह समाज में मौजूदा असमानताओं को तब भी बढ़ाती है जब इसे रोकने के लिए पर्याप्त सावधानी बरती जाती है। पूरी तरह से बँटे हुए और तकनीकी रूप से कमज़ोर समाज में ऐसा प्रयोग करना बिल्कुल बचकानी बात है।

शिक्षा में असमानता से अनजान या संपन्न को और सुविधाएँ देने की कवायद ?
इस कॉन्सेप्ट नोट के शब्दकोश में "सामाजिक न्याय" या भारत के संविधान की दृष्टि के लिए कोई जगह नहीं है और न ही सामाजिक उत्पीड़न व आर्थिक असमानता के बारे में कोई संवेदनशीलता। यह ज्ञान के बजाय धन की इच्छा की, बौद्धिक विकास के बजाय पल-पल बदलते झुकाव की और सामाजिक जरूरतों के बजाय निजी चाहतों की बात करता है। अनुच्छेद 4.2.5 में वास्तविक, पेशे की दुनिया के संपर्क में आने की बात है। इसे अटूट सच की तरह पेश करके यह माना गया है कि छात्रों में न तो दुनिया को बदलने के लिए कल्पना होती है और न ही ताक़त। यह एक बने-बनाए व अपरिवर्तनीय जगत में युवाओं द्वारा केवल अपने निजी हित साधने की संकल्पना को पेश करता है। संपूर्ण दस्तावेज़ उच्चतम-आय वाले समूहों के लिए तैयार किया गया है जो महँगे उपकरणों का बोझ उठा सकते हैं। महामारी के पिछले एक वर्ष ने दिखाया है कि कैसे प्रौद्योगिकियों और इंटरनेट तक पहुंच में गैर-बराबरी ने पहली पीढ़ी के स्कूली/कॉलेज शिक्षार्थियों , गरीबों और हाशिए पर पड़े अन्य समूहों के लिए चुनौतियाँ खड़ी की हैं। परिसरों और कक्षाओं में शारीरिक रूप से मौजूद होने पर शिक्षकों से मिलने वाली बेहद ज़रूरी मदद से अब वे महरूम हो गए हैं। 'अपनी गति से सीखें' का नियम ऐसे छात्रों को पीछे छोड़ देगा क्योंकि बी-एल इस तथ्य को ध्यान में नहीं रखता है कि सीखने के माहौल को छात्र के लिए सहज बनाना है। इतनी व्यापक डिजिटल असमानता वाले देश में एक अच्छी नीति में सबसे अधिक पिछड़े हुए को चिंता के केंद्र में रखना चाहिए। इसके बदले , इस दस्तावेज़ में शारीरिक रूप से विकलांग छात्रों की आवश्यकताओं को पूरा करने के बारे में एक शब्द भी नहीं है।

कॉन्सेप्ट नोट में इस आधारभूत जानकारी का ही अभाव है कि भारत के अधिकांश हिस्सों में तकनीकी बुनियादी ढांचे में डिजिटल विभाजन और असमानतायें हैं। दस्तावेज़ पढ़कर लगता है कि डिजिटल

दुनिया तक पहुंच में कोई बाधा नहीं है , देश के हर नुक्कड़ पर हाई-स्पीड इंटरनेट नेटवर्क कनेक्टिविटी है, शिक्षक और छात्र तकनीकी उपकरणों के माध्यम से सीखने में लगे हुए हैं और सीखने वाले की मर्ज़ी के हिसाब से चुनने और सीखने की पर्याप्त स्वतंत्रता है। इस सारी सामग्री के साथ डिजिटल पढ़ाई में जुड़ने की जिम्मेदारी छात्रों पर डालने के विचार में यह सोच निहित है कि विद्यार्थियों के पास कोई अन्य काम नहीं है , जबकि हक़ीक़त में उनका अतिरिक्त समय अक्सर अपने और अपने परिवार के निर्वाह के लिए ज़रूरी गतिविधियों में चला जाता है। यह भी मान लिया गया है कि बी-एल के पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए अपेक्षित सामग्री से ज़रूरी तत्व निकालना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है , जबकि यह ख़ुद एक लंबी तैयारी की माँग करती है। ऐसे कई गांव और क्षेत्र हैं जहां फ़ोन या कंप्यूटर का नियमित इस्तेमाल मुमकिन नहीं है। जो वीडियो बनाए गए हैं , उनमें भारी सामग्री है , और ये आसानी से समझ आने लायक नहीं हैं। डिजिटल पटल पर औपचारिक व्याख्यान अंग्रेजी और/या संस्कृतनिष्ठ स्थानीय भाषा में हैं। यह एकतरफ़ा व अजनबियत की भाषा विद्यार्थियों के जुड़ने से लेकर सीखने-समझने में भारी रुकावट का काम करती है। इसके अलावा , टॉप डाउन नज़रिए से आईआईटी और कुलीन विश्वविद्यालयों के सामग्री बनाने में क्षेत्रीय महत्व की सामग्री नज़रंदाज़ हो रही है और ज्ञान की ज़मीन को सिकोड़ा जा रहा है।

दस्तावेज़ में उल्लेख किया गया है कि 'विश्व स्तर पर कई शिक्षण ढाँचों ने मिश्रित शिक्षा को अपनाया है और यह सबसे अधिक अपनाया जाने वाला शिक्षण उपकरण भी है'। हक़ीक़त ये है कि पश्चिमी देशों में इसने उन लोगों को कुछ फ़ायदा पहुँचाया है जो औपचारिक शिक्षा के मौजूदा बुनियादी ढांचे का लाभ उठाने में असमर्थ हैं। इसके उलट , हमारे देश में इस तरह की भारी तकनीक का लाभ उन लोगों को मिलेगा जो पहले से ही कुलीन कॉलेजों/विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे हैं। भारत के संदर्भ में वंचित पृष्ठभूमियों के छात्र इल्म हासिल करने और समाज में अपनी जगह बनाने की उम्मीद में बड़ी सामाजिक, आर्थिक चुनौतियों के बावजूद उच्च शिक्षा में प्रवेश के लिए संघर्ष करते हैं। जबकि ये सचमुच के स्व-प्रेरित छात्र असल में बी-एल पद्धति से सबसे कम लाभ प्राप्त कर पाएँगे, ऐसे में दस्तावेज़ का बी-एल के माध्यम को छात्रों के 'सेल्फ ड्राइव' से जोड़ कर पेश करना विडंबनापूर्ण है।

जो कोई भी महामारी की अवधि के दौरान ऑनलाइन मीटिंग में शामिल हुआ है, वह जानता है कि सभी को साथ रख पाना कितना मुश्किल है , खासकर जब संख्या बड़ी हो। जब तक कोई फीस देकर मिली समर्पित आईटी सेवा उपलब्ध न हो , हर कोई सार्वजनिक डोमेन पैकेज और प्लेटफॉर्म की किरपा पर निर्भर होता है और अक्सर उसी समय गड़बड़ियां होती हैं जब महत्वपूर्ण चर्चा चल रही होती है। ऐसी परिस्थितियों में 'विचार-मंथन' के लिए 'स्टिकी नोट्स' और 'एक्टिविटी टूल्स' आदि विशेषताओं की क्या प्रासंगिकता रह जाती है ? इसमें कोई शक नहीं है कि छात्रों का एक निश्चित वर्ग , जो पहले से ही सुविधाओं का फायदा ले रहा है , इस तरह के तरीकों से लाभ हासिल करेगा। सवाल यह है कि क्या राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 केवल संपन्न लोगों के लिए है?

यह दस्तावेज़ एनईपी 2020 का स्वाभाविक हिस्सा है जिसे संपन्न वर्गों को और सुविधाएँ देने के लिए बनाया गया है।

शिक्षाशास्त्र पर कोई विचार नहीं

दस्तावेज़ टेक्नोलॉजी-केंद्रित पढ़ाई को उच्च शिक्षा के लिए एकमात्र क़ाबिल शिक्षाशास्त्र का दर्जा देता है।

इस प्रकार सामाजिक संवाद के माध्यम से बुद्ध की शिक्षा , जॉन डीवी की संवाद पद्धति, पाउलो फ़्रेरे की आलोचनात्मक सोच, जोतिराव फुले के सामाजिक पदानुक्रम को तोड़ने वाले तर्क में देखे गए अध्यापन के लंबे इतिहास को दरकिनार कर दिया गया है।

इस नोट में उल्लिखित कुछ संदर्भ-दस्तावेज़ों (कुल नौ) को बी-एल के तर्क का आधार निर्धारित करने के लिए इस्तेमाल किया गया है। 'के-12 शिक्षा के लिए बेहतर उप-मॉडल' व एमओओसी (मैसिव ओपन ऑनलाइन कोर्सेस) का उल्लेख दर्शाता है कि सामग्री और विचारों को अमेरिकी शिक्षण-साहित्य से नकल किया गया है। यहां तक कि 'नमूना पाठ्यक्रम संरचना ' (तालिका 2.1), कतई किसी भारतीय विश्वविद्यालय से नहीं हो सकती है, क्योंकि अधिकांश पाठ्यक्रम छात्र को पश्चिमी प्रकार की सेटिंग के लिए तैयार करने के लिए हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि दस्तावेज़ में उद्धृत एक भी संदर्भ भारतीय शोधकर्ताओं के काम का नहीं है। कॉन्सेप्ट नोट में अक्सर 'परिवर्तन के लिए शिक्षा' के बजाय 'ट्रांसफ़ॉर्मिंग एजुकेशन' वाक्यांश का उपयोग किया गया है। शिक्षा को बदलने की कोई भी कवायद यह स्पष्ट करने के साथ शुरू होनी चाहिए कि शिक्षा और शिक्षाशास्त्र का मक़सद क्या है। इस नोट में ऐसी किसी भी स्पष्टता की ग़ैर-मौजूदगी गंभीरता की कमी को दर्शाती है।

दस्तावेज़ का सैद्धांतिक ढांचा वाला अध्याय शिक्षाशास्त्र पर बहस से संबंधित नहीं है , हालाँकि भारत में इस तरह की बहसों और प्रथाओं का एक लंबा इतिहास रहा है। गांधी , टैगोर, जाकिर हुसैन, अरबिंदो, कृष्णमूर्ति, फुले, अम्बेडकर, राधाकृष्णन आयोग या कोठारी आयोग ने शिक्षा , उसके उद्देश्य और भूमिका या खास तौर से शिक्षाशास्त्र को कैसे देखा, इसका एक भी ज़िक्र इस दस्तावेज़ में नहीं है। शैक्षिक बहस की यह अनदेखी कल्याणकारी राज्य में सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली की कल्पना (जिसे कभी लागू नहीं किया गया) के बचे-खुचे हिस्से को नष्ट करने का इरादा दर्शाती है।

विभिन्न विषयों में शामिल जटिलताओं पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। सामाजिक विज्ञान और मानविकी या कला और डिजाइन या जैव टेक्नोलॉजी और कंप्यूटर विज्ञान की अपनी विशिष्ट अनुशासनात्मक ज़रूरतें हैं। जबकि भारत में 2020 से ऑनलाइन सीखना-सिखाना चालू करने के संदर्भ में इस बात को देखने का पूरा अवसर था कि यह असल में कैसे काम करता है और शिक्षकों व छात्रों को कैसी परेशानी का सामना करना पड़ा है, बी एल को थोपने के लिए इस दस्तावेज़ को आनन-फ़ानन में लाकर यह मौक़ा गँवा दिया गया है।

दस्तावेज़ में मूल्यांकन पर लंबे-चौड़े सुझाव हैं। उदाहरण के लिए, ओपन बुक परीक्षा के लिए बहुत सोच-विचार की आवश्यकता होती है। एक पेंच होना चाहिए जो छात्र के दिमाग पर जोर दे। इस तरह के अभ्यासों के लिए न केवल अत्यधिक प्रतिभाशाली शिक्षकों की आवश्यकता होती है , बल्कि ये सवाल भाषा के इस्तेमाल पर निर्भर करते हैं। दस्तावेज़ में 'आई-सी-टी पहल और उपकरण ' पर एक पूरा अध्याय है जिसकी विषयवस्तु का वंचित समूहों के छात्रों के लिए कोई मायने नहीं है। प्रचलित भारतीय शिक्षा परिदृश्य में इस तरह की पहल और उपकरणों के उपयोग की कई शिक्षाविदों द्वारा व्यापक रूप से आलोचना की गई है। उदाहरण के लिए, एल-एम-एस प्लेटफॉर्म 'उच्चतम ग्रेड' वाले संस्थानों में पहले-से ही उपयोग में है और , विशेष रूप से बड़ी कक्षाओं में , शिक्षकों को ऐसे प्रत्येक प्लेटफॉर्म के साथ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है तथा छात्रों को मुश्किल में डालकर कई प्लेटफ़ॉर्मों के साथ प्रयोग करने के लिए मजबूर किया गया है। नतीजतन, वर्तमान महामारी की स्थिति में, प्रशासकों ने प्रशिक्षकों को मूल्यांकन में 'उदार' होने के लिए मजबूर किया है। इन शर्तों ने औपचारिक डिग्री प्राप्त करने में इन

संस्थानों के संपन्न छात्रों को लाभान्वित किया है, लेकिन सीखने का स्तर काफी नीचे चला गया है। यह दिलचस्प है कि तालिका 3.1 में उल्लिखित लगभग सभी प्लेटफॉर्म , जो विशिष्ट संस्थानों में उपयोग किए जा रहे हैं , अन्य देशों में डिजाइन किए गए हैं। आईसीटी तेजी से बदलता क्षेत्र है। इसमें सिर्फ़ टिके रहने के लिए, इसके साथ दौड़ते रहना पड़ता है। छात्रों की वो आबादी भी जो बिल्कुल हाशिए पर नहीं है, हमेशा नुकसान में रहेगी तथा संपन्न वर्गों से उत्तरोत्तर पिछड़ती चली जाएगी। अभिजात वर्ग के छात्र एक नई तकनीक अपना लेते हैं और पीछे रह गए लोग खारिज संस्करण से चिपके रहते हैं। जब ज्यादातर पढ़ाई टेक्नोलॉजी के ज़रिए है , तो बी-एल वातावरण में शिक्षक-छात्र संबंधों के बारे में लिखी सभी बातों में बहुत अधिक मतलब नहीं रहता है। आखिर में छात्र वही सोचते हैं जो कि गूगल जैसे एग्रीगेटर उनसे चाहते हैं।

शिक्षकों के खिलाफ टेक्नोलॉजी

हाल का अनुभव दिखलाता है कि डिजिटल टेक्नोलॉजी को लचीलेपन के नाम पर शामिल करने से शिक्षकों को लंबे संघर्षों से अर्जित सेवा-शर्तों में नुकसान पहुंचा है। शिक्षकों और छात्रों को उनके काम और भूमिका के लिए अनिवार्य किए गए उपकरणों , डेटा, अन्य सहायक संसाधनों को प्राप्त करने में व्यक्तिगत लागत लगानी पड़ रही है। बी-एल छात्रों और शिक्षकों को 'वर्क फ्रॉम होम' के नाम पर 24X7 काम व अनियमित कामकाजी परिस्थितियों में डालता है तथा श्रमिकों के अधिकारों के हनन और एकजुट होकर अलोकतांत्रिक उपायों का विरोध करने के अधिकार से वंचित करने की ज़मीन तैयार करता है।

प्रधानमंत्री के नियमित संबोधनों को संस्थानों में अनिवार्य रूप से दिखाने के आदेश साबित करते हैं कि स्मार्ट क्लास का मतलब केंद्रीकृत प्रसारणों में अनिवार्य उपस्थिति होगा। दस्तावेज़ एक बेतुका दावा करता है कि बी-एल छात्रों और शिक्षकों की गोपनीयता में सहायक है , हालांकि शिक्षकों का ऑनलाइन अनुभव दिखाता है कि इससे निजी परिवेश में घुसपैठ हुई है और शिक्षकों को अक़्सर अभिव्यक्ति में आत्म-सेंसरशिप लागू करनी पड़ी है।

इस दौरान शिक्षकों को अनिवार्य ऑनलाइन रीफ्रेशर पाठ्यक्रम/सेमिनार से गुजरना पड़ा है , जिनकी सामग्री और प्रारूप से यह लगभग सुनिश्चित हो जाता है कि भागीदारी सार्थक नहीं होगी। इसके विपरीत, सरकार की ओर से आते भ्रमित संदेशों की वजह से अंतर्राष्ट्रीय सहयोग , सम्मेलन, चर्चा आदि कमजोर होते जा रहे हैं।

पढ़ने-पढ़ाने को हर कहीं एक जैसा बनाने का प्रयास

मिश्रित शिक्षण मॉडल विषयों को एक रंग से रंगने , उन पर वर्चस्व क़ायम करने और विषय-अनुशासनों के विचारों और ऐतिहासिक धाराओं को खत्म करने का एक प्रयास है। उदाहरण के लिए , अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और नृविज्ञान के विभिन्न स्कूल हैं। इन अनुशासनात्मक रुख़ों और ऐतिहासिक धाराओं ने विभिन्न विभागों की स्थापना की है - समाजशास्त्र में बॉम्बे स्कूल , लखनऊ स्कूल, दिल्ली स्कूल और जेएनयू के रुझान काफी अलग रहे हैं - और इन फ़र्क़ों ने अनुशासन को समृद्ध किया है, तथा अनुशासन के भीतर स्वस्थ बहस को राह दिखाई है। पाठ्यक्रम की 'खिचड़ी', दस्तावेज़ जिसके पक्ष में तर्क देता है, अनुशासनात्मक आदर्शों को सहेज कर नहीं रखती और हक़ीक़त में सीखने को कमज़ोर करती है। किसी भी विषय में नए विचारों के विकास के लिए विभिन्न विचारों पर खुली बहस का महत्व है। तमाम वीडियो के बावजूद, ज्ञान के उत्पादन पर जोर डालकर, बी-एल इस संभावना को खत्म करता है।

ज्ञान में सत्ता की ऊँच-नीच को समाप्त करने से ही महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आते हैं और नए विचार पनपते हैं। कॉन्सेप्ट नोट में शिक्षकों के लिए प्रस्तावित भूमिका ऐसी किसी भी संभावना से इनकार करती है।

यह साफ़ किए बिना कि इसमें समस्या क्या है , कॉन्सेप्ट नोट में व्याख्यान पद्धति के खिलाफ लगातार कहा गया है। फ़्रेरे , गांधी, टैगोर से लेकर विश्व बैंक तक , इन सभी ने इस प्रश्न को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखा है, हालांकि यूजीसी के दस्तावेज़ में इसका कोई असर दिखाई नहीं देता है। व्याख्यान देना अपने आप में तभी नुक़सानदेह है जब यह दुनिया को स्थिर , खंडित और निर्जीव रूप में प्रस्तुत करता है, और छात्रों को व्याख्याता को चुनौती देने की इजाज़त नहीं देता है। बी-एल यह प्रस्तावित नहीं करता है कि व्याख्यान पद्धति की खामियों को विषयवस्तु से कटे हुए 40 प्रतिशत वीडियो द्वारा कैसे सुधारा जा सकता है। ऑनलाइन शिक्षण में गलियारे , कैंटीन या अन्य सार्वजनिक स्थानों में अध्यापक के साथ अनौपचारिक बातचीत नहीं हो सकती है। ऑनलाइन शिक्षण मे सैकड़ों अनदिखे छात्र किसी भी सार्थक संवाद से वंचित कर दिए जाते हैं और उल्लिखित सभी खामियों के साथ और भी भारी व्याख्यान होते हैं। रिकॉर्ड किए गया व्याख्यान में वे सवाल नहीं किए जा सकते जो वास्तविक कक्षा में होने वाले व्याख्यान में उठाए जाते हैं और जिनका वहाँ जवाब दिया जाता है। सशरीर कक्षा अपने विविध रूपों में जाति, वर्ग और लिंग जैसे सामाजिक रूपों से प्रासंगिक मसलों पर सवाल खड़े करने की गुंजाइश मुहैया कराती है और इस तरह समाज को चुनौती देने और बदलने की संभावना भी रखती है।

मिश्रित या अन्यथा, अध्यापन के कौशल को, शिक्षकों के पेशेवर, शैक्षणिक और बौद्धिक विवेक पर छोड़ दिया जाना ही सबसे बेहतर विकल्प है। ऐसे में, यह संभव है कि अलग-अलग शिक्षक अपने संदर्भों और छात्रों की जरूरतों के अनुसार बी-एल पद्धति को अपनाएँ। लेकिन यह दस्तावेज़ निरंकुशता के साथ इसे अनिवार्य रूप से लागू कर शिक्षकों को अपनी स्थिति के अनुसार सोचने और कार्य करने की क्षमता से वंचित करता है।

इसी रवैये के चलते , तमाम तथ्यों और वास्तविकताओं को नज़रअंदाज़ करके बी-एल पद्धति को जल्दबाजी में 'सफल' घोषित करने की होड़ मची हुई है। दस्तावेज़ के अध्याय 2 में, अनुभवजन्य अध्ययनों के बजाय अस्पष्ट बयानबाजी पर आधारित जुमलों की भरमार है ; मिसाल के लिए, 'छात्रों का बढ़ा जुड़ाव', 'शिक्षक और छात्र के बीच बातचीत में बढ़त ', 'अधिक लचीला शिक्षण और सीखने का माहौल' जैसे सफ़ेद झूठ आदि।

बी-एल 'उन्नत संस्थागत प्रतिष्ठा' और 'अनुभवात्मक सीखने के बेहतर अवसर ' का जश्न मनाता प्रतीत होता है। लेकिन सच्चाई यह है कि भारतीय शिक्षा व्यवस्था की गैर-बराबरी से भरी संरचना में आईआईटी/आईआईआईटी/आईआईएसईआर/टिस/टीएफ़आईआर जैसे संस्थान और केंद्रीय विश्वविद्यालय शीर्ष पर हैं। यहाँ तक कि नए केंद्रीय विश्वविद्यालय भी संसाधनों के लिए संघर्ष कर रहे हैं और अपनी अलग पहचान बनाने के लिए किसी मौके के अभाव में तानाशाही फरमानों को मानने के लिए मजबूर हो गए हैं। अधिकांश राज्य-विश्वविद्यालय और कॉलेज संसाधनों की कमी और ज़बरदस्त राजनीतिक दखलअन्दाज़ी का सामना कर रहे है। इस स्थिति में 'प्रतिष्ठा... में बढ़त' पाने के दबाव से महज़ रैंकिंग और मान्यता के लिए होड़ और धोखाधड़ी ही बढ़ेगी। जब वंचित वर्गों के लिए शिक्षा तक पहुंच लगातार मुश्किल होती जा रही है और एक अस्थिर परिवेश में कई उज्ज्वल युवा छात्र, चाहे वह रोहित वेमुला हों

या पायल तडवी, संस्थागत और राजनीतिक बदमाशी से आत्म-विनाश की ओर धकेले जाते हैं , तो ऐसे में 'बेहतर अवसर' का शायद ही कोई मतलब रह जाता है।

विश्वविद्यालयों को कोचिंग सेंटर और शिक्षकों को तकनीशियन में बदलने वाला दस्तावेज़

'बी-एल के परिवेश में शिक्षकों की भूमिका' खंड में, शिक्षक को एक कोच और संरक्षक (खंड 2.2) के रूप में बताया गया है। भले ही शिक्षकों को ऊँचे पद पर न बिठाया जाए , लेकिन उनकी भूमिका को केवल एक 'कोच' तक सीमित नहीं किया जा सकता है। लगता है कि शिक्षक को एक "सुविधाकर्ता" (फ़ैसिलीटेटर) के रूप में केवल पाठ्यक्रम और मूल्यांकन के तरीकों को चुनने तक सीमित किया जा रहा है और शिक्षा के अन्य पहलुओं को टेक्नोलॉजी चलाएगी।

शिक्षण में शिक्षकों द्वारा अपनी राय थोपने की समस्या का हल शिक्षक के मार्गदर्शन को टेक्नोलॉजी से बदलना नहीं हो सकता। ऊपर से नीचे तक की ग़ैर-लोकतांत्रिक पद्धति को कक्षाओं में तभी चुनौती दी जा सकती है जब शिक्षा को सामाजिक संबंधों की आलोचना के केंद्र में रखा जाए। उदाहरण के लिए , फुले ने ब्राह्मणवादी कक्षा की जो आलोचना की है उसका समाधान शिक्षक को कक्षा से हटाना नहीं हो सकता, क्योंकि कक्षा तो सामाजिक संबंधों का प्रतिबिंब मात्र है। दस्तावेज़ जब छात्रों को भविष्य के लिए तैयार करने की बात करता है , तो वह न तो एक बेहतर मानवीय नज़रिए को तैयार करने की बात करता है और न ही सामाजिक नागरिकता की। दस्तावेज़ का जोर महज़ एक आत्म-केन्द्रित नव-उदारवादी व्यक्ति बनाना है।

महामारी के दौरान मिली सीख के ठीक विपरीत, कॉन्सेप्ट नोट में कल्पना की गई है कि मिश्रित शिक्षा पाठों में टेक्नोलॉजी के एकीकरण के साथ छात्रों की रुचि को "बढ़ाएगी", और छात्रों का इस पढ़ाई में लंबे समय तक "ध्यान लगा" रहेगा। स्क्रीन क्लासरूम के दौरान अन्य टैब को खुला रखने की संभावना रहती है और शिक्षकों द्वारा कई बार यह पाया जाता है , और छात्र भी बतलाते हैं कि छात्र इस दौरान गेम खेल लेते हैं या चैट करते हैं। कॉन्सेप्ट नोट के अनुसार , बी-एल में सीखना इस अंतर्निहित खतरे के साथ आता है कि यदि वे ख़ुद पाठ नहीं सीखते हैं तो छात्रों को मूल्यांकन के दौरान नुकसान उठाना होगा। कॉन्सेप्ट नोट "स्वयं के सीखने की ज़िम्मेदारी" लेने के संदर्भ में "छात्र स्वायत्तता" को मान कर चलता है। हालांकि यह महत्वपूर्ण है, यह मूल्यांकन परिणामों की धमकी देकर नहीं किया जा सकता है। यहाँ अपने हितों के अनुसार काम करने का विकल्प नहीं बल्कि एक ऊँच-नीच की प्रणाली के नियंत्रण को मानने की मजबूरी दिख रही है।

सामान्य परिस्थितियों में शिक्षक को पता होता है कि किसी डिग्री प्रोग्राम में प्रवेश लेने के बाद 'क्या पढ़ना है' और 'कैसे पढ़ना है' जैसे सवालों का हल ढूँढने के लिए छात्रों को मार्गदर्शन की ज़रूरत होती है। शिक्षक इन सवालों का जवाब ढूँढने में छात्र की मदद करती है। बी-एल पद्धति में शिक्षकों की भूमिका को कम करने का प्रस्ताव है और यह सोचा गया है कि छात्र इस तरह के हस्तक्षेप के बिना सब कुछ ठीक कर लेंगे। छात्रों से अपेक्षा की जा रही है कि वे सभी शैक्षणिक निर्णय लें और उनके परिणाम भुगतें।

कॉन्सेप्ट नोट में यह सोच है कि बी-एल "हरेक छात्र के साथ शिक्षक की लगातार अधिक और ज्यादा निजी बातचीत पैदा करेगा"। लेकिन जहाँ पढ़ाई का इतना अहम हिस्सा ऑनलाइन कर दिया जाएगा हो और शिक्षक की भूमिका इतनी सीमित होगी, वहाँ एक शिक्षक सैंकड़ों छात्रों से कैसा रिश्ता बना पाएगी?

दस्तावेज़ कई प्रवेश और निकास बिंदुओं की बात करता है। 'शैक्षणिक मुद्रा तोड़ने की धारणा' 'ए बी सी (अकादमिक बैंक क्रेडिट) ' डिजाइन की विशेषताओं में से एक है। ए बी सी की यह धारणा शिक्षा का व्यावसायीकरण करती है और छात्रों के हितों और चिंताओं को दूर रख , शिक्षा को शैक्षिक बाजार में 'क्रेडिट' खरीदने और बेचने के लिए एक निजी वस्तु के रूप में प्रस्तुत करती है। क्रेडिट प्राप्त करने के लिए ज़रूरी संसाधन बाँटने का आधार क्या होगा ? उच्च शिक्षा से जल्दी बाहर निकलने पर मिले डिप्लोमा की क्या कीमत होगी? जवाब का इंतज़ार करते इन सवालों के मद्देनज़र यह तय है कि आधे-अधूरे ज्ञान और संदेहास्पद नतीजों के साथ बाहर निकले युवाओं में निराशा ही बढ़ेगी।

क्रेडिट सिस्टम छात्रों को संस्थानों से काटता है। शिक्षकों की संबद्धता का भविष्य क्या है ? पूरी तरह से परिसर वाला संस्थान नहीं होने के कारण , उसके खास चरित्र और विरासत के खो जाने और नष्ट होने की संभावना है। जिस तरह से जेएनयू को बरबाद किया गया , वह इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। विभिन्न सामाजिक हक़ीक़तों को पूरा करने वाले विविध शैक्षणिक संस्थान एकरूप हो जाएंगे। बेशक , शिक्षकों की भर्ती, नियुक्ति और इनमें सामाजिक न्याय के क्रियान्वयन पर भी प्रभाव पड़ेगा।

शिक्षकों के प्रति फिकरेबाजी पृष्ठ 5 में शुरू होकर वहीं खत्म हो जाती है। यहाँ शिक्षक द्वारा शिक्षण के मूल्य को माना गया है , जिसमें सीखने का निजी अनुभव विकसित होता है और जहाँ प्रोत्साहन , करुणा और देखभाल के मानवीय तत्व जुड़े हुए होते है। लेकिन बात यहीं रुक जाती है , क्योंकि दस्तावेज़ में तो शिक्षक को हटा कर उसकी जगह तकनीक लाने पर जोर दिया गया है। शिक्षकों और छात्रों को नियंत्रित करने की इच्छा अध्याय 4 के अंतिम भाग में धारा 'एफ' के तहत भी ज़ाहिर होती है , जिसमें बायोमेट्रिक्स की बात की गई है।

शिक्षण और परीक्षाओं के संदर्भ में संस्थानों , उनकी पहचान, एकजुटता, संगठनों और प्रतिबद्धताओं के टूटने और बिखरने की एक परेशान करने वाली प्रवृत्ति भी दिखती है , जहां व्यक्तिगत हितों को प्रोत्साहित कर 'मांग और इच्छा' अनुसार परीक्षाएं करवाने में ही संस्थानों की एकमात्र प्रासंगिकता बचती है।

परिदृश्य 2.5.2 और 3.4.2 में राष्ट्रीय स्तर के संस्थान की बात है जो क्रमशः 'बड़े पैमाने पर ' और आभासी प्रयोगशालाओं में शिक्षक-प्रशिक्षण में शामिल हैं। ये हमें उन उपयोगों की एक झलक प्रदान कराते हैं असल में जिनके लिए इस तरह के तरीकों को वास्तविक व्यवहार में लाया जाएगा। यहां प्रस्तुत दोनों उदाहरण न केवल व्यवसायों और विषयों के स्थापित मानदंडों के अनुसार नाजायज हो सकते हैं, वे यह भी दिखाते हैं कि इस पद्धति का प्रभाव कैसे अनुशासनात्मक मानदंडों को कमजोर करेगा और घटिया दर्जे का उत्पादन करेगा। बिना किसी सार्वजनिक निवेश के , बिना तैयारी के, पेशेवर और रोजगार के लिहाज से असुरक्षित, और कम वेतन पर काम करने को मजबूर शिक्षकों का बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लिए ही यह व्यवस्था बनाई जा रही है।

दस्तावेज़ खुद का खंडन करता है। एक तरफ (2.5, पैरा 2) यह ऐसा आभास देता है मानो विद्यार्थी के पास यह विकल्प है कि इस पर कितना समय लगाना है। दूसरी तरफ , सच्चाई यह है कि ये विकल्प एक गप्प है क्योंकि विश्वविद्यालयों में निश्चित संख्या में क्रेडिट , घंटे आदि के साथ बी-एल जबरन लागू किया जा रहा है।

शिक्षक से अपेक्षा की जाती है कि वह किसी सॉफ्टवेयर के ज़रिए फटाफट मूल्यांकन करे और अपनी राय/ग्रेड छात्रों को तेज गति से और पारदर्शी तरीके से बताए। यदि कक्षा में छात्रों की संख्या बहुत अधिक है तो शिक्षक स्क्रीन पर चिपके रहने के लिए मजबूर होगा क्योंकि आदर्श रूप से ऑनलाइन पद्धति में छात्रों की संख्या पर कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए।

इन परिस्थितियों में सोचा जा सकता है:

एक ऐसा विश्वविद्यालय होगा, जहां शिक्षण सामग्री की तैयारी ई-लर्निंग कंपनियों द्वारा की जाएगी, जो हाल ही में तदर्थ और अतिथि संकाय जैसे नियमित नौकरी से बाहर की फैकल्टी को नियुक्त करेगी , जिन्होंने अपनी नौकरी खो दी है या जो शिक्षक बनने के इच्छुक हैं। वही लोग एक प्रश्न बैंक और मूल्यांकन के तरीके तैयार कर सकते हैं और इन चीजों के समन्वय के लिए विभाग में कोई शिक्षक नियुक्त किया जा सकता है। बहुत जल्द, बड़ी संख्या में शिक्षकों को नियुक्त करने की आवश्यकता भी कम हो सकती है। आखिरकार , यदि टेक्नोलॉजी प्राथमिक हो जाती है तो मानवीय हस्तक्षेप की उतनी ही आवश्यकता नहीं होगी।

शिक्षा का विनियंत्रण : शिक्षा को बाज़ार की सामग्री बनाने की परियोजना को पूरा करना

स्वाभाविक रूप से, शिक्षा तंत्र में प्रशासकों को प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी , लेकिन इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि शिक्षा के बजट में हुई कमी से इस चिंता का समाधान कैसे होगा। तो प्रस्तावित उपायों के लिए संस्था और व्यक्तिगत शिक्षार्थी को कौन निधि देगा? जाहिर है, इसे निजी हाथों पर छोड़ दिया गया है, जिनका ध्यान गुणवत्ता हासिल करने के बजाय तमाम हथकंडे अपनाकर ठेके हथियाने व 'मालिकों' को ख़ुश करके लाभ की स्थिति बनाए रखने पर होता है।

शिक्षा प्रणाली "अ ला कार्ट मॉडल" के रूप में दिखाई देगी और ऑनलाइन शिक्षण और "टेक्नोलॉजी" के "पूरी प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण तत्व" बनने के साथ , संस्थानों के भीतर शिक्षकों की आवश्यकता और कम हो जाएगी। "वस्तुनिष्ठता और मानकीकरण" के नाम पर शैक्षिक संस्थानों को ज्ञान उत्पादन में किसी भी महत्वपूर्ण भूमिका से वंचित कर एक मशीनीकृत बाजार तक महदूद कर दिया जाएगा,। संभव है कि निजी डिजिटल कंपनियों के बुनियादी ढांचे और सॉफ्टवेयर उत्पादों को स्थापित करने के लिए चुनिंदा सार्वजनिक संस्थानों में सार्वजनिक व्यय किया जाए। इसके बाद इस सीमित व्यय का इस्तेमाल 'संसाधनों का कुशल उपयोग करने ' के आधार पर अनुपालन को आगे बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। यह एक बाजार होगा जहां छात्र उपभोक्ता हैं और शिक्षक परामर्शदाता सलाहकार हैं जो छात्रों के लिए छाँट कर पाठ्यक्रम तैयार करते हैं।

एनईपी 2020 के तहत आगे धकेला जा रहा बी-एल डिजिटल उपकरणों के बढ़ते उपयोग के संबंध में मानव स्वास्थ्य और पारिस्थितिक नुकसान के मुद्दों की पूरी तरह से अवहेलना करता है (जो , व्यावसायिक हितों के कारण, तेजी से अप्रचलित हो जाने के लिए डिज़ाइन किए जाते हैं)।

दस्तावेज़ में क्रिएटिव कॉमन्स (सृजन की शामलात ज़मीं) का संदर्भ (आभासी अर्थ में) एक बयानबाजी की तरह लगता है , क्योंकि असल में तो सरकारी नीतियों के समर्थन से साझे संसाधनों व स्थलों को निजी हाथों में सौंपा या बेचा जा रहा है।

निष्कर्ष

बी-एल पर यूजीसी कॉन्सेप्ट नोट पूरी तरह निजी उपभोक्ता के करियर की प्रगति के उद्देश्य से बनाया गया है — यदि इस तरह की प्रगति इस तरीके से संभव हो तो। इसे मानव विकास और सामाजिक मुक्ति के लिए ज्ञान की तलाश करने के उद्देश्य से नहीं लाया जा रहा है। बाजार के लालच से प्रेरित और "सभी को सब कुछ सीखने की जरूरत नहीं है" के दर्शन से लैस , यह दस्तावेज़ भारत के संविधान की दृष्टि के विपरीत है, लेकिन मनु की दृष्टि के साथ पूर्ण सहमति में है।

कुल मिलाकर शिक्षा के बजट को कम करने के साथ-साथ तकनीकी सुधार की बात करना भारतीय छात्रों के साथ एक क्रूर मजाक है। लोकतांत्रिक विचारधारा वाले सभी शिक्षकों और छात्रों को पूरी ताकत से सरकार और यूजीसी की इस सनक का विरोध करने की जरूरत है।

असमानता उल्टा पिरामिड है , जिसका कोई आधार नहीं है। शासक वर्ग लगातार संकीर्ण आधार पर अस्थिर शीर्ष को चौड़ा करने की बात कर रहे हैं। शिक्षा के एक गंभीर पुनर्निर्माण की शुरुआत शिक्षा के बजट में कटौती को रोककर, इसे अपेक्षित स्तरों तक बढ़ाकर, सभी शिक्षण संस्थानों को समान सुविधाएं प्रदान करके, शिक्षकों और कर्मचारियों के रिक्त पदों को भरने आदि से आधार को चौड़ा करने से होनी चाहिए। एक अत्यधिक विविध और बहुलवादी समाज में केंद्रीकरण पूरी तरह से नुकसानदेह है। तकनीकी सुधार तब काम करता है जब इसके लिए ज़मीन तैयार हो जाती है। हमें तकनीक की जरूरत है, लेकिन उल्टे पिरामिड के शीर्ष को चौड़ा करने के लिए नहीं, बल्कि आधार को स्थिर बनाने के लिए।

(नोट: मार्च 2021 में यूजीसी ने 'स्वयं' पोर्टल के कोर्सों के लिए नियम जारी किए और मई के अंत में कोर्सों के 40% तक के हिस्से को 'ब्लेंडेड लर्निंग' के तहत लाने के निर्देश दिए। यहाँ हम अभाशिअमं द्वारा यूजीसी की 'ब्लेंडेड लर्निंग' की प्रस्तावना की आलोचना, जगह की कमी के चलते, थोड़ी काँट-छाँट के साथ दे रहे हैं। पूरी आलोचना पढ़ने के लिए आप अभाशिअमं की वेबसाइट पर जा सकते हैं। अनुवाद: फ़िरोज़ अहमद)

****

सरगर्मियाँ

दमन जितना बढ़ेगा, हमारी आवाज़ भी उतनी बुलंद होगी!

सितंबर के पहले हफ़्ते में छपी एक रपट में बताया गया कि मिज़ोरम के स्कूली शिक्षा निदेशक ने राज्य के ज़िलों के शिक्षा अधिकारियों व उप-ज़िला शिक्षा अधिकारियों को 31 अगस्त को एक पत्र लिखकर यह निर्देश जारी किए कि प्रवासी व शरणार्थी [पृष्ठभूमि के] बच्चों को शिक्षा अधिकार अधिनियम के तहत स्कूलों में दाख़िले दिए जाएँ। ज़ाहिर है कि ये निर्देश म्याँमार में फ़ौजी तानाशाही के लोकतंत्र-विरोधी दमन से बचकर भारत में पनाह लेने आए परिवारों के बच्चों के संदर्भ में जारी किए गए थे। क़ाबिलेग़ौर है कि लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए लड़ रहे लोगों को म्याँमार की फ़ौजी कार्रवाइयों में ख़ासतौर से निशाना बनाया गया है , जिसके चलते हज़ारों की तादाद में सीमा के निकट रहने वाले व अन्य लोग मिज़ोरम तथा अन्य सीमावर्ती

राज्यों में चले आए हैं। भारत सरकार ने मानवाधिकारों के इस संकट पर सामरिक मौन बरता है और सशस्त्र बलों को सीमा पार करने वाले शरणार्थियों को सख़्ती से रोकने के निर्देश ही दिए हैं। इसके विपरीत, राष्ट्रीय सीमाओं से परे जनजातीय व इंसानी रिश्तों के चलते मिज़ोरम के लोगों ने संकट में पड़े इन लोगों की खुलकर मदद की है। स्कूली शिक्षा निदेशक का यह स्वागतयोग्य क़दम इसी जनदबाव का नतीजा है। हालाँकि, यह भी सच है कि इंसानी मूल्यों पर आधारित किसी भी शिक्षा व्यवस्था में किसी स्कूल को अपने पड़ोस के किसी भी बच्चे-बच्ची को प्रवेश देने के लिए किसी अतिरिक्त प्रशासनिक इजाज़त या निर्देश की दरकार नहीं होगी।

उत्तर-प्रदेश के सरकारी स्कूलों में जातिगत भेदभाव - असल में अस्पृश्यता पर आधारित हिंसा - की ख़बरों में एक मैनपुरी के दौदापुर प्राथमिक विद्यालय से आई जहाँ स्कूल के दलित पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों के बर्तनों को , बाक़ी बर्तनों से अलग , रसोई से बाहर रखा जाता था और इन विद्यार्थियों के बर्तनों को रसोइयों द्वारा धोया भी नहीं जाता था। यहाँ तक कि इन बच्चों के लिए जातिसूचक संबोधन इस्तेमाल किया जाता था। गाँव की प्रधान के माध्यम से शिकायत होने पर भी तथाकथित उच्च-जाति से संबंध रखने वाली प्रधानाचार्य ने न सिर्फ़ कार्रवाई नहीं की , बल्कि उनके पति ने दबंगई जताते हुए ऐलान किया कि यही स्कूल का दस्तूर है और इसे बदला नहीं जाएगा। बाद में , प्रशासन तक शिकायत पहुँचने पर जाँच में आरोप सच पाए गए और रसोइयों को निकाल दिया गया , मगर हैरानी की बात है कि इस प्रसंग में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत कोई केस दर्ज करने या कार्रवाई करने की रपटें नहीं आई हैं। बल्कि गाँव की प्रधान के पति के अनुसार मामला उठाने के नतीजतन उन्हें स्थानीय दबंग जाति के कुछ लोगों से धमकियाँ मिलने लगी हैं। जातिगत हिंसा के आरोप अमेठी के बनपुरवा प्राथमिक स्कूल की प्रधानाचार्य के ख़िलाफ़ भी लगे। विद्यार्थियों ने शिकायत की कि न सिर्फ़ मिड-डे-मील वितरण में उनके साथ भेदभाव होता है , बल्कि उनके साथ शारीरिक हिंसा भी होती है। जातिगत उत्पीड़न के निवारण के लिए बने क़ानून के उल्लंघन के अलावा , यह हिंसा शिक्षा अधिकार अधिनियम का भी उल्लंघन है, तथा साबित करती है कि कैसे हिंसा के तार कमज़ोर के ख़िलाफ़ गुँथे हुए हैं। हालाँकि, इस मामले में केस दर्ज किया गया है। दोनों मामलों में समान बात यह थी कि गाँव के इन स्कूलों के विद्यार्थियों की बड़ी संख्या दलित व पिछड़े वर्गों से है , जबकि स्कूल की संस्कृति पर दबंग जातियों का वर्चस्व है। विडंबना यह है कि मिड-डे-मील प्राधिकरण द्वारा योजना का सोशल ऑडिट कराने का प्रावधान तो है , मगर साल-दर-साल निकलने वाली इन प्रायोजित रपटों में हिंसा पर पर्दा डालकर विभाग , सरकार एवं दबंग जातियों को निर्दोष सिद्ध कर दिया जाता है।

इसी दौरान एक और रपट में बताया गया कि कलकत्ता उच्च-न्यायालय के एक अंतरिम आदेश में विश्व भारती विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को उप-कुलपति बिद्युत चक्रोबोर्ती के निवास के सामने चल रहे अपने विरोध-प्रदर्शन को 3 सितंबर तक समाप्त करने को कहा गया। विद्यार्थी अगस्त 27 की रात से ही विश्व भारती विश्वविद्यालय प्रशासन के 23 अगस्त के उस

फ़ैसले के ख़िलाफ़ प्रदर्शन कर रहे थे जिसमें 3 विद्यार्थियों - हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत विभाग के सोमनाथ, फाल्गुनी एवं रूपा - को अनुशासनात्मक कार्रवाई के तहत 3 वर्षों के लिए निष्कासित कर दिया गया था। इसी दिन 2 शिक्षकों को भी निलंबित किया गया, जिससे कि निलंबित कर्मचारियों-शिक्षकों की संख्या 20 हो गई। इन विद्यार्थियों पर, जोकि लगभग 9 महीनों से निलंबित चल रहे थे, जनवरी 2020 में भाजपा के सांसद स्वप्नदास गुप्ता के सीएए के बारे में प्रस्तावित अभिभाषण के विरुद्ध कैंपस विरोध-प्रदर्शन के दौरान 'घोर अनुशासनहीनता व दुर्व्यवहार' करने का आरोप था। इस अंतरिम आदेश में विश्वविद्यालय के स्वायत्त लोकतांत्रिक चरित्र, उसकी स्वस्थ परंपरा तथा गरिमा पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए कहा गया कि उप-कुलपति की सुरक्षा के लिए उनके सुरक्षा गार्ड्स के अतिरिक्त शांतिनिकेतन पुलिस थाने से 3 कांस्टेबल मौजूद रहेंगे! इसके अलावा, विश्वविद्यालय के किसी भी अकादमिक हिस्से से 50 मीटर की दूरी तक विरोध-प्रदर्शन पर रोक लगा दी गई, लाउडस्पीकर को प्रतिबंधित कर दिया गया और विद्यार्थियों द्वारा सीसीटीवी की निगरानी को रोकने वाली तमाम बाधाओं को हटाने के निर्देश दिए गए। हालाँकि, राज्य सरकार की ओर से उपस्थित क़ानूनी सलाहकार ने उप-कुलपति द्वारा लगाए गए सभी आरोपों को, कि उनकी आवाजाही व स्वास्थ्य-सहायता को बाधित किया गया, ख़ारिज किया। दरअसल, पिछले साल सौ वर्षों से ऊपर की पौष मेला की परंपरा को पहली बार रोका गया, सीसीटीवी लगाकर निगरानी तंत्र का जाल बिछाने की कोशिशें की गईं और फिर इस साल उप-कुलपति ने अपने कार्यकाल के ख़त्म होने से पूर्व संस्थान को बंद करने की धमकी तक दे डाली। इन सब बातों से आक्रोशित विद्यार्थी-शिक्षक-कर्मचारी आंदोलन करते आ रहे थे। बदले की कार्रवाई करते हुए प्रशासन ने न सिर्फ़ निष्कासन-निलंबन के दमनकारी क़दम उठाने शुरु किए, बल्कि वह अदालत गया और उसने प्रवेश प्रक्रिया रोकने की चाल चली। फ़िलहाल, अदालत के अंतरिम आदेश के चलते आंदोलन को भले ही एक धक्का लगा हो, मगर यह निश्चित है कि रबीन्द्रनाथ द्वारा स्थापित कला और तमाम संकीर्णताओं से परे इंसानी रिश्तों को समर्पित इस विश्वविद्यालय के विद्यार्थी-कर्मचारी-शिक्षक, अपने संस्थान के कुलपति के मंसूबों के बावजूद, आरएसएस की नफ़रत में डूबी जहालत को चुनौती देते रहेंगे।

दिल्ली विश्वविद्यालय प्रशासन ने 26 अगस्त को एक प्रेस विज्ञप्ति के माध्यम से बीए इंग्लिश (ऑनर्स) के पाठ्यक्रम के पाँचवें सेमेस्टर के कोर वूमेंस राइटिंग पेपर में शामिल तीन रचनाओं को हटाने के फ़ैसले को सार्वजनिक किया। ये रचनाएँ हैं - महाश्वेता देवी की कहानी 'द्रौपदी', बामा का उपन्यास 'संगति' और सुकिरथरानी की कविताएँ 'ऋण' (डॅट) व 'मेरा शरीर' (माय बॉडी)। जबकि ये रचनाएँ मूल रूप से क्रमशः बांग्ला और तमिल में हैं, इनके अनुवादों को पाठ्यक्रम में शामिल करने का उद्देश्य विद्यार्थियों को भारतीय भाषाओं में रचित ऐसे साहित्य से परिचित कराना था जो विविधता व विरोध के स्वरों का प्रतिनिधित्व करते हुए इंग्लिश साहित्य के रूढ़िवादी ढाँचे की सीमाओं को तोड़ने व विस्तार देने का काम करे। दोनों तमिल लेखिकाओं के मज़बूत दलित स्त्रीवादी स्वर और बांग्ला कहानी में राजकीय दमन के ख़िलाफ़

दर्ज आदिवासी स्त्री प्रतिरोध से बेशक ये रचनाएँ कोर्स को अधिक लोकतांत्रिक बनाती थीं और विद्यार्थियों की चेतना को संवेदनशील व परिवर्तनकामी रुख़ देने की गुंजाइश रखती थीं। और यही उस केंद्रीय सत्ता को नागवार गुज़रता है जिसके इशारों पर शिक्षा के इदारों में तमाम प्रतिगामी फ़ैसले लिए जा रहे हैं। यह फ़ैसला भी विश्वविद्यालय की एक ग़ैर-अकादमिक व ग़ैर-जवाबदेह संस्था ओवरसाइट कमिटी (निगरानी समिति) द्वारा लिया गया। सितंबर के पहले हफ़्ते में ही इस हिटलरवादी फ़ैसले के ख़िलाफ़ विश्वविद्यालय के इंग्लिश के सौ से ज़्यादा शिक्षकों ने एक पत्र लिखकर अपना विरोध दर्ज किया और इसे वापस लेने की माँग की। उन्होंने कहा कि लोकतांत्रिक तरीक़ों से चुनी हुई अकादमिक समितियों ने समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाली लोकतांत्रिक रूप से विविध रचनाओं को शामिल किया है। निगरानी समिति ने न केवल इस लोकतांत्रिक प्रक्रिया का उल्लंघन किया है , बल्कि उसकी दख़लंदाज़ी के चलते 2019 से ही हर सेमेस्टर में पाठ्यक्रम घोषित करने में देरी होती रही है। इस साल भी सेमेस्टर शुरु होने के 44 दिन बाद कोर्स घोषित किया गया। प्रशासन ने उप-कुलपति की आपातकालिक शक्तियों का दुरुपयोग करके एक अकादमिक विषय में ज़ोर-ज़बरदस्ती की। जब पहली बार इन रचनाओं को हटाने का प्रस्ताव आया था , तो इंग्लिश विभाग ने निगरानी समिति को दो बार लिखकर इसका अकादमिक व शिक्षाशास्त्रीय कारण समझाने को कहा था। जबकि सुनने में आया कि निगरानी समिति ने महाश्वेता देवी की किसी भी रचना को शामिल करने से इंकार कर दिया। शिक्षकों का मानना है कि इंग्लिश विभागाध्यक्ष की औपचारिक रज़ामंदी दबाव बनाकर और शिक्षकों की आमसभा या पाठ्यक्रम उपसमिति से स्वीकृति लिए बग़ैर ली गई। शिक्षकों ने विश्वविद्यालय प्रशासन के इस अकादमिक रूप से अवैध बयान को हैरतंगेज़ बताया जिसमें कहा गया था कि विविधता के लिए जाति , धर्म, क्षेत्र आदि को संज्ञान में लेना ज़रूरी नहीं हैं। शिक्षकों ने यह भी कहा कि निगरानी समिति द्वारा इंग्लिश में बीए डिग्री कोर्स को 'भाषा कोर्स' बताना उसके उस अकादमिक दीवालियेपन को उजागर करता है जिसके तहत उसने पाठ्यक्रम को कमज़ोर करने वाला ये फ़ैसला लिया है। दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षकों के अलावा देशभर के शिक्षकों , बुद्धिजीवियों, राजनीति कर्मियों आदि ने भी इस फ़ैसले को वापस लेने और तीनों लेखिकाओं की रचनाओं को शामिल रखने की माँग करने वाले बयान जारी किए। तमिल नाडु सरकार की तरफ़ से भी इस माँग का समर्थन किया गया। लेकिन सबसे जोशीली प्रतिक्रिया ख़ुद बामा व सुकिरथरानी ने व्यक्त की। उन्होंने इसे अप्रत्याशित नहीं बताते हुए यह ऐलान किया कि इससे उनकी रचनाओं की ताक़त सिद्ध होती है, कि लोग उन्हें और ज़्यादा पढ़ेंगे तथा वो और बुलंद स्वर में लिखती रहेंगी। दलित इंटेलेक्चुअल्स कलेक्टिव ने माँग की है कि दिल्ली विश्वविद्यालय तीनों लेखिकाओं से माफ़ी माँगे।

इस बीच देश के अलग-अलग उच्च-शिक्षा संस्थानों से अतार्किक , झूठी और संकीर्ण विषयवस्तु वाले विषयों को थोपने की ख़बरें आती रहीं। इसमें इतिहास से मनगढ़ंत छेड़छाड़ से लेकर विज्ञान के नाम पर दक़ियानूसी व मिथकीय आग्रहों को बढ़ावा देना शामिल था। छपरा में जय

प्रकाश नारायण विश्वविद्यालय के राजनीति विज्ञान के परा-स्नातक कोर्स से ख़ुद जेपी के अलावा राममनोहर लोहिया, एम एन रॉय व राममोहन रॉय को हटाकर दीन दयाल उपाध्याय को शामिल करने के लिए सुभाष चंद्र बोस और ज्योतिबा फुले की आड़ ली गई। इस फ़ैसले की व्यापक आलोचना के बाद मुख्यमंत्री को ख़ुद बचाव में उतरते हुए विश्वविद्यालय प्रशासन को अकादमिक सलाह-मशवरे से काम करने की नसीहत देनी पड़ी और फिर कोर्स से बेदख़ल किए गए पाठों को बरक़रार रखना पड़ा। हालाँकि, संभवतः इस समझौते में दीन दयाल उपाध्याय पर शामिल किए पाठ को हटाया नहीं जाएगा। वहीं जेएनयू के स्कूल ऑफ़ इंजीनियरिंग में 'जिहादी आतंकवाद' के नाम पर इस्लाम को हिंसा के लिए एकतरफ़ा रूप से दोषी तथा वैश्विक सैन्य गठजोड़ व उसकी अवैध हिंसक कार्रवाइयों को जायज़ ठहराने वाला कोर्स शुरु करने की घोषणा की गई। शिक्षकों ने आरोप लगाया कि इस कोर्स को उप-कुलपति के इशारे पर अकादमिक संस्थाओं से सलाह किए बिना लाया गया। अकादमिक तौर-तरीक़ों को धता बताती हुई केंद्र सरकार की शह और सीधे नियंत्रण का सबूत केंद्र शिक्षा मंत्री द्वारा उप-कुलपति को कोर्स लाने के लिए दी गई सार्वजनिक शाबाशी से मिल गया। उधर यूजीसी ने इतिहास में स्नातक स्तर के लिए पाठ्यचर्या की नई रूपरेखा सामने रखी जिसमें मिथकों को तरजीह देते हुए स्त्री व जाति के आयामों को दरकिनार कर दिया गया है। इस रूपरेखा में न केवल मुग़ल काल पर उपलब्ध उम्दा तारीख़ी दस्तावेज़ों को नज़रंदाज़ किया गया है, बल्कि इरफ़ान हबीब व आर एस शर्मा सरीखे इतिहासकारों को नकार कर 'भारत का मतलब' (द आइडिया ऑफ़ भारत) पेपर के नाम पर हिंदुत्व के ग़ैर-तथ्यात्मक तत्वों को प्रस्तावित किया गया है। देखना है कि अपने इल्म और खोज को गंभीरता से लेने वाले इतिहासकारों तथा शिक्षा संस्थानों द्वारा असल में इसे कैसे बरता जाएगा। जो विकृति सामाजिक विज्ञान में आग्रहों के स्वांग में पेश होती है, वो विज्ञान में आते-आते फूहड़ व बचकाने दावों में बदल जाती है। बीएचयू में दर्शनशास्त्र का विभाग संस्कृत विभाग द्वारा तैयार हिन्दुइज़्म पर डिग्री कोर्स संचालित करेगा जिसका एक घोषित उद्देश्य विदेशी विद्यार्थियों को आकर्षित करना है। इसके पहले हिमाचल विश्वविद्यालय द्वारा इसी विषय पर एक डिप्लोमा कोर्स प्रदान किया जा रहा था। इग्नू ज्योतिष शास्त्र में कोर्स और अहमदाबाद स्थित गुजरात तकनीकी विश्वविद्यालय गऊ अनुसंधान केंद्र में गाय के मल-मूत्र व दूध के विशेष फ़ायदों पर शोध अवसर उपलब्ध कराएगा। कोरोना की आपदा में भी जनता के स्वास्थ्य संकट और संसाधनों की घोर कमी की गंभीरता से खिलवाड़ करते हुए गऊ-उपचार के मिथकीय दावे पेश किए गए थे, जिनका कोई नामलेवा नहीं रहा। हाँ, मणिपुर के पत्रकार और कार्यकर्ता को यह सीधा सच याद दिलाने पर राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के तहत जेल में ज़रूर ठूँस दिया गया। देर से ही सही, सुप्रीम कोर्ट ने सख़्त ऐतराज़ जताते हुए इनकी तुरंत रिहाई के आदेश दिए थे। इसके बावजूद सत्ता की मदमस्त ढिठाई जारी है।

विश्वविद्यालयों में इन अँधकूप सरीखे कोर्सों को लाना साबित करता है कि फ़ासीवादियों की नज़रों में शिक्षा के क्षेत्र तक में सच, तर्क, तथ्य जैसे आधारभूत मूल्यों की औक़ात क्या है। इधर जनता के हाथों से सेहत व वैज्ञानिक शिक्षा के हक़ छीने जा रहे हैं, उधर आरामतलब

जातिगत वर्गों के वर्चस्व को बचाने व मज़बूत करने के लिए संसाधन बहाए जा रहे हैं। जनता इन सब हथकंडों का माक़ूल जवाब देगी।

कन्नूर विश्वविद्यालय में एमए गवर्नेंस और राजनीति कोर्स के तीसरे सेमेस्टर में गोलवलकर , सावरकर, बलराज मधोक और दीन दयाल उपाध्याय के विचार शामिल करने पर हुई आलोचना के मद्देनज़र एक बाहरी विशेषज्ञ समिति बनाई गई जिसने पाठ्यचर्या का अध्ययन करके कुछ सुधार सुझाए। इन सुझावों पर ग़ौर करते हुए राजनीति विज्ञान की बोर्ड ऑफ़ स्टडीज़ ने पाठ्यचर्या को संशोधित किया , जिसे अकादमिक परिषद ने स्वीकृति दे दी। रपटों के अनुसार , नई पाठ्यचर्या में गोलवलकर व सावरकर के पाठ रखे गए हैं , जबकि बलराज मधोक और दीन दयाल उपाध्याय को जगह नहीं मिली है। हालाँकि , समिति ने इस्लामी , द्रविड़, समाजवादी और गाँधीवादी विचारों को भी शामिल करने की सलाह दी है। इस विवाद ने बहस के इन बिंदुओं पर फिर से ध्यान खींचा कि अकादमिक स्वायत्तता को कैसे परिभाषित किया जाए तथा आलोचनात्मक अध्ययन के लिए अस्वीकार्य (हिंसक/नफ़रती) मूल लेखन को इस्तेमाल किया जाए तो कैसे। बहरहाल , यह तय है कि किसी विचाराधारात्मक दस्तावेज़ का इस्तेमाल इस्तेमाल करने वाले/सत्ताधारी की राजनैतिक समझ व नीयत पर निर्भर करेगा।

इस पूरी क़वायद को ताज पहनाते हुए प्रधानमंत्री ने एक कुत्सित ऐलान किया कि हर साल 14 अगस्त की तारीख़ को विभाजन विभीषिका स्मृति दिवस के रूप में मनाया जाएगा। यह उनके बेपरवाह व बीमार आत्म-केंद्रण की ताज़ा मिसाल ही थी कि इस बारे में उन्होंने , हमेशा की तरह, न कोई सार्वजनिक चर्चा कराने और न ही विशेषज्ञों व विपक्ष से सलाह करने की ज़रूरत महसूस की। गुजरात की एक व्यावसायिक कंपनी को ठेका देकर जालियाँवाला बाग़ को एक शहीदी स्थल की यादगार से पिकनिक स्वरूपी पर्यटन स्थल में बदलकर स्मृतियाँ मिटाने की कोशिश करने वाले दिलो-दिमाग़ जब विभाजन विभीषिका की स्मृति ज़िंदा रखने की बात करते हैं तो हम जानते हैं कि उनके मंसूबे अपनी शर्मनाक करतूतों पर पर्दा डालने , जनता की क़ुर्बानियों के इंसाफ़पसंद आदर्शों को मिटाने और नई विभीषिकाएँ रचने के ही हो सकते हैं। इसी तरह की हरकत गाँधी से जुड़े साबरमती आश्रम के साथ की जा रही है जिसका ठेका भी गुजरात की एक ऐसी कंपनी को मिला है जो अयोध्या के राममंदिर , काशी विश्वनाथ कॉरिडोर और नई दिल्ली के सेंट्रल विस्टा के सैकड़ों/हज़ारों करोड़ के प्रोजेक्ट पर काम कर रही है। यह इतिहास और लोक स्मृति से घिनौनी छेड़छाड़ है जिसका एक उद्देश्य लोकतांत्रिक आदर्शों को शालीन चादर से ढँकना और दूसरा उद्देश्य हर चीज़ से , चाहे वो प्यार और क़ुर्बानी ही क्यों न हो, आर्थिक-राजनैतिक मुनाफ़ा कमाना है। लेकिन, सब याद रखा जाएगा!

मैंगलोर में सेंट एलॉयसियस कॉलेज पर हमले की निंदा: मैंगलोर में स्वायत्तशासी सेंट एलॉयसियस कॉलेज ने अपने परिसर में अवस्थित पार्क का नाम मानवाधिकार व आदिवासी अधिकार कार्यकर्त्ता दिवंगत फादर स्टेन स्वामी के नाम पर रखने का फैसला किया था. विद्यार्थी परिषद, विश्व हिंदू परिषद और बजरंग दल सहित हिंदुत्व फासीवादी समूहों ने इस फैसले का विरोध करते हुए विरोध प्रदर्शन की धमकी दी और कहा कि किसी भी प्रकार की

अप्रिय घटना के लिये कॉलेज प्रशासन ज़वाबदेह होगा. कम्पेन टू डिफेंड डेमोक्रैसी, कर्नाटक ने जिला प्रशासन और पुलिस विभाग से इस तरह की गंभीर आपराधिक धमकी देनेवाले गुंडों के खिलाफ तत्काल कार्रवाई करने का अनुरोध किया है. कालेज प्रशासन के निर्णय के विरोध में आवाज़ उठानेवाले गुंडों को ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं है. यह विरोध संघियों के विशिष्ट एजेंडे के तहत है जो हिंसा और साम्प्रदायिकता फैलाना चाहते हैं और इनका इतिहास भी ऐसे ही कुकृत्यों का है. संघी और उनसे संबद्ध तमाम संगठन नागरिकों के निजी मामलों में दखल देकर सामाजिक भेदभाव का वातावरण पैदा कर रहे हैं.

सेंट एलॉयसियस कॉलेज ऐसे महान मानवतावादी के नाम पर पार्क का नाम रखना चाहता है जिन्होंने अपना पूरा जीवन समाज के उत्पीड़ित वर्गों के उत्थान के लिये समर्पित कर दिया था और इस वज़ह से उन्हें फासीवादी सरकार की चालाक और नापाक साजिशों का शिकार होना पड़ा.

आपराधिक धमकी देनेवाले इन फासीवादी संगठनों के खिलाफ जिला प्रशासन और पुलिस को तत्काल कार्रवाई करनी चाहिए और कॉलेज के निजी मामलों में किसी भी हस्तक्षेप के खिलाफ उचित सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए.

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और दिल्ली विश्वविद्यालय में चार वर्षीय स्नातक कार्यक्रम को फिर से शुरु करने के खिलाफ 21 अक्टूबर, 2021 को छात्रों और शिक्षकों के कई संगठनों ने शास्त्री भवन, नई दिल्ली के बाहर प्रदर्शन किया, जहाँ शिक्षा मंत्रालय का कार्यालय अवस्थित है. इन संगठनों ने कोविड महामारी के मद्देनज़र बंद किये गए कॉलेजों और स्कूलों को फिर से खोलने की मांग उठाई. प्रदर्शनकारी संगठनों ने एक संयुक्त बयान में कहा कि उन्होंने शिक्षा मंत्रालय को एक ज्ञापन सौंपा है. संगठनों ने कहा कि अगर उनकी मांगें नहीं मानी गईं तो वे विरोध प्रदर्शन तेज करेंगे . विरोध करनेवाले संगठनों में अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच, अखिल भारतीय क्रांतिकारी छात्र संगठन, आइसा, डीवाईएफआई, एसएफआई और यूथ फॉर स्वराज शामिल रहे.

(नोट: इस रपट को तैयार करने के लिए इंडियन एक्सप्रैस , द हिंदू, सबरंग इंडिया, ऑनलाइन मीडिया की विभिन्न साइट्स पर प्रकाशित ख़बरों व रपटों को आधार बनाया गया है।)

****

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच का राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के खिलाफ तीन महीने के कार्यक्रम की अपील :

1. एनईपी 2020 के खिलाफ 3 महीने लंबे विकेन्द्रीकृत अभियान के लिए अपील : यद्यपि एआईएफआरटीई एनईपी 2020 का लगातार विरोध कर ता रहा है, अब हम अपने सभी सदस्य/सहयोगी/भ्रातृ संगठनों, राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्यों , अभियान सहयोगियों और हमारे आंदोलन के अन्य सभी समर्थकों से अपील करते हैं कि वे हमारे आंदोलन को तेज करें- आने वाले 3 महीनों के लिए फिजिकल और वर्चुअल मोड में विकेन्द्रीकृत तरीके से हमारा अखिल भारतीय विरोध। हम आपसे एनईपी 2020 के विरोध के हिस्से के रूप में और आने वाले 3 महीनों के लिए सामाजिक न्याय के अन्य संबंधित मुद्दों को भौतिक मोड में उठाने के लिए इतिहास और शिक्षा की राजनीति (अनुबंध 1) में कुछ नीचे सूचीबद्ध महत्वपूर्ण तिथियों पर कार्यक्रम आयोजित करने की अपील करते हैं। सोशल मीडिया पर भी इसे शेयर कर रहे हैं। इन तिथियों से जुड़े सभी आंकड़ों को भारत की लोकतांत्रिक कल्पना में उनके योगदान के लिए याद किया जाता है, जिसका शिक्षा एक अभिन्न अंग है। जबकि विभिन्न भाग लेने वाले संगठन अपने कार्यक्रमों के लिए विशिष्ट तिथियां चुन सकते हैं, सोशल मीडिया अभियान आने वाले महीनों में इन सभी तिथियों पर जारी रहेगा। इस सूची में अन्य तिथियों को भी शामिल किया जा सकता है। यदि ऐसी जानकारी हमारे साथ साझा की जाती है तो हम इसकी सराहना करेंगे ताकि हम अपनी सूची को भी धीरे-धीरे अपडेट कर सकें।

2. अभियान के कुछ सुझाए गए प्रमुख मुद्दे : हमने अनुबंध 2 में इस अभियान के कुछ प्रमुख मुद्दों को सूचीबद्ध किया है। हालाँकि, विशिष्ट संगठन यह तय कर सकते हैं कि किसी विशेष तिथि पर किसी भी मुद्दे को उजागर करने की आवश्यकता है। हमारे अभियानों में अधिक स्थानीय सामग्री और मुद्दों को जोड़ना ; एनईपी के कार्यान्वयन के संबंध में राज्य/क्षेत्रीय स्तर पर परामर्श आयोजित करना ; शिक्षण संस्थान और संबंधित सुविधाएं खोलने की मांग ; और नियमित रूप से विकेन्द्रीकृत विरोध प्रदर्शनों को भौतिक रूप में आयोजित करना और उन्हें सोशल मीडिया में प्रस्तुत करना भी संघर्ष की सफलता के लिए अनिवार्य होगा।

3. अभियान में समाज के विविध वर्गों को शामिल करना : हमारे संघर्ष को मजबूत करने के लिए, छात्रों, युवाओं, शिक्षकों और अभिभावकों के संगठनों/संघों/संघों के साथ व्यवस्थित संवाद के माध्यम से अपने सामाजिक-राजनीतिक आधार को व्यापक बनाने पर अधिक ध्यान देना चाहिए; दलितों, आदिवासियों, विकलांगों, ट्रांसजेंडरों, महिलाओं और धार्मिक और भाषाई

अल्पसंख्यकों के अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले संगठन ; और कॉर्पोरेट विरोधी संघर्षों, किसानों और श्रमिकों के आंदोलनों के साथ तालमेल तलाश ने की ज़रूरत होगी. अखिल भारतीय और क्षेत्रीय/राज्य दोनों स्तरों पर उनके साथ व्यवस्थित संवाद करने की दृष्टि से विभिन्न संघर्षों की एक निर्देशिका बनाई जाएगी।

4. साइबर स्पेस में जमीनी स्तर के संघर्षों का प्रक्षेपण : इस अभियान की सोशल मीडिया टीम साइबर स्पेस में इन भौतिक संघर्षों को एक साथ लाने के लिए सहायता प्रदान करने का प्रयास करेगी। इसके लिए प्रत्येक प्रतिभागी संगठन को विरोध के इन सभी दिनों में एक साझा हैशटैग #NEPQuitIndia का उपयोग करना चाहिए। बेशक, वे अन्य हैशटैग का भी उपयोग कर सकते हैं , लेकिन इसके अतिरिक्त। संगठनों को संदेश भेजने के लिए रचनात्मक तरीकों का उपयोग करना चाहिए : सोशल मीडिया पर अभियान , जैसे लघु वीडियो, उद्धरण, चित्र, स्थानीय सामग्री का उपयोग , स्थानीय भाषा का उपयोग , और व्यक्तिगत संगठनों द्वारा निर्मित सैद्धांतिक सामग्री भी।

5. एक खुला पत्र: अभियान में मीडिया/सोशल मीडिया/भौतिक मोड में वितरण के माध्यम से जनता के बीच बड़े पैमाने पर प्रसार के लिए एक खुला पत्र है। इसे अभियान के भागीदार संगठनों द्वारा भारत के राष्ट्रपति , सांसदों, विधायकों, राज्यपालों और स्थानीय सरकारी अधिकारियों को भी प्रस्तुत किया जाना है। अभियान के लिए अन्य आंदोलनों और राजनीतिक दलों से समर्थन लेने के लिए भाग लेने वाले संगठनों द्वारा पत्र का भी उपयोग किया जा सकता है। पत्र में ऑल इंडिया फोरम फॉर राइट टू एजुकेशन (AIFRTE) का नाम होगा, साथ ही उस संगठन का नाम होगा जो इसे उपर्युक्त किसी भी प्राधिकरण को प्रस्तुत करता है या इसे भ्रातृ संगठनों के साथ साझा करता है या इसे जनता के बीच वितरित करता है।

6. पोस्टर: विशिष्ट तिथियों और मुद्दों पर अभियान के पोस्टर का एक सेट होगा जो आयोजन समिति और उसकी सोशल मीडिया टीम द्वारा तैयार किया जाएगा। प्रत्येक संगठन से यह भी अनुरोध है कि वह इस कॉमन पूल को कम से कम एक पोस्टर उपलब्ध कराए। इसके अलावा, प्रत्येक संगठन के अपने पोस्टर होंगे। सभी प्रतिभागियों को अभियान पोस्टरों के साथ सोशल मीडिया के विभिन्न हैंडलों में अपनी प्रोफ़ाइल तस्वीर बदलनी चाहिए।

7. सोशल मीडिया अभियान रणनीति : प्रत्येक संगठन को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अभियान के प्रत्येक दिन उनके द्वारा कम से कम 10 पोस्ट जारी किए जाएं, और वे अन्य संगठनों द्वारा कम से कम 20 पोस्ट साझा करें। ट्वीट और रीट्वीट करते समय , प्रतिभागियों को सरकारी अधिकारियों , मंत्रालयों और मंत्रियों को नौकरशाहों , राजनीतिक दल के नेताओं और तीनों स्तरों - संघ , राज्य और स्थानीय स्तर के निर्वाचित प्रतिनिधियों के खातों के साथ टैग करना चाहिए। भाग लेने वाले संगठनों से अनुरोध है कि वे प्रत्येक

ट्वीट/एफबी पोस्ट में एआईएफआरटीई को टैग करें ताकि उन्हें एआईएफआरटीई खाते से रीट्वीट या साझा किया जा सके।

कृपया अभियान सामग्री के लिए निम्नलिखित Google ड्राइव लिंक तक पहुंचें और हम इसे धीरे-धीरे अपडेट करते रहेंगे:

https://drive.google.com/drive/folders/1LrdOlmOmAhQqxCLHFy5y4Evv_yMG9Rv4

प्रोफेसर जगमोहन सिंह

डॉ. विकास गुप्ता

(अध्यक्ष, एआईएफआरटीई) (संगठन सचिव, एआईएफआरटीई)

अनुलग्नक 1

शैक्षिक आंदोलन के लिए ऐतिहासिक महत्व की कुछ तिथियां

- 28 सितंबर - भगत सिंह जयंती और शंकर गुहा नियोगी शहीद दिवस
- 30 सितंबर- नेता इराबोट दिवस
- 2 अक्टूबर - महात्मा गांधी जयंती
- 12 अक्टूबर - डॉ राम मनोहर लोहिया स्मृति दिवस
- 4 नवंबर - गुइज़ांग मेरु जेलियांग दिवस
- 6 नवंबर-अक्टूबर क्रांति दिवस
- 11 नवंबर - मौलाना अबुल कलाम आजाद जयंती
- 15 नवंबर - गिजुभाई बधेका जयंती
- 26 नवंबर - संविधान दिवस
- 28 नवंबर - ज्योतिराव फुले स्मृति दिवस
- 30 नवंबर - गुरजादा अप्पाराव की पुण्यतिथि
- 3 दिसंबर - विकलांगों का अंतर्राष्ट्रीय दिवस
- 6 दिसंबर - डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर परिनिर्वाण दिवस
- 9 दिसंबर - रोकैया बेगम (रोकेया सखावत हुसैन) जयंती + स्मृति दिवस
- 10 दिसंबर - मानवाधिकार दिवस
- 24 दिसंबर - पेरियार की पुण्यतिथि

नोट: इस सूची में कम से कम 3 तारीखें हैं जब हम एक ही दिन अखिल भारतीय विरोध प्रदर्शन कर सकते हैं: 28 सितंबर, 11 नवंबर और 26 नवंबर। संगठन इन तिथियों पर कुछ गतिविधियों की योजना बनाना पसंद कर सकते हैं। उदाहरण के लिए , हमें मालूम हुआ है कि कई संगठनों ने पहले ही 28 सितंबर को मनाने के लिए अपने कार्यक्रमों की योजना बना ली है। इसी तरह, कई संगठन 26 नवंबर को संविधान दिवस मनाने के लिए कार्यक्रम आयोजित करना चाहेंगे। इसलिए उनसे अनुरोध है कि वे अपने पहले से नियोजित कार्यक्रमों और एनईपी 2020 के विरोध के बीच तालमेल स्थापित करें। इसके अलावा ,

पिछली सरकार द्वारा 11 नवंबर को राष्ट्रीय शिक्षा दिवस के रूप में घोषित किया गया था। इसे वर्तमान सरकार ने भुला दिया है। हम भाग लेने वाले संगठनों से विशेष रूप से धर्मनिरपेक्षता और धार्मिक अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर ध्यान केंद्रित करके इस दिन को मनाने की अपील करते हैं।

अनुलग्नक 2

कुछ ने अभियान के दौरान उठाए जाने वाले प्रमुख मुद्दों का सुझाव दिया:

1. सामाजिक न्याय को खत्म करना: (ए) एनईपी प्रवेश , भर्ती और पदोन्नति में आरक्षण के संवैधानिक प्रावधान की उपेक्षा करता है (बी) योग्यता की गहरी समस्याग्रस्त और राजनीति से प्रेरित परिभाषाओं को स्वीकार करता है (सी) आरटीई की 'नो-डिटेंशन पॉलिसी' को और कमजोर करता है अधिनियम (डी) सभी छात्रवृत्तियों के लिए एकल योग्यता आधारित खिड़की।

2. कॉर्पोरेट 'परोपकार' के नाम पर निजीकरण: (ए) एनईपी परोपकार के नाम पर शिक्षा में कॉर्पोरेट संस्थानों को बढ़ावा देता है (बी) स्व-वित्तपोषित पाठ्यक्रमों को बढ़ावा देता है , अनुदान में कमी करता है , और छात्र ऋण के साथ छात्रवृत्ति को तेजी से बदल देता है (सी) पूरी तरह से शिक्षण संस्थानों के शुल्क और वेतन ढांचे को नियंत्रित करता है (डी) अनुमति देता है कि निजी संस्थान अधिशेष या लाभ जमा कर सकते हैं (ई) राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर और बिना नई शाखाएं स्थापित करने के लिए 'एक संस्थान में किए गए अधिशेष' को स्थानांतरित करने की अनुमति देता है और वास्तव में निगमीकरण की सुविधा प्रदान करता है और शिक्षा का वैश्वीकरण (च) सार्वजनिक शिक्षा , विशेष रूप से सार्वजनिक विश्वविद्यालयों को खत्म करना (छ) बचपन की देखभाल और शिक्षा को इस तरह से अवधारणाबद्ध किया गया है जो इसे बाजार के लिए खोलता है।

3. शुल्क वृद्धि: (ए) बड़े पैमाने पर निजीकरण की ओर बदलाव (बी) गैर-लाभकारी स्कूलों/कॉलेजों/विश्वविद्यालयों पर उनके शुल्क ढांचे के संबंध में कोई जांच नहीं (सी) स्व-वित्तपोषित पाठ्यक्रमों को प्रोत्साहित किया गया (डी) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को प्रोत्साहित किया गया।

4. सांप्रदायिक शिक्षा: (ए) नीति दस्तावेज से 'धर्मनिरपेक्षता' और 'समाजवाद' शब्द का जानबूझकर बहिष्कार (बी) इतिहास के विरूपण और पाठ्यक्रम के माध्यम से सांप्रदायिक दृष्टिकोण में धकेलना (सी) "प्राचीन भारतीय गौरव" का उत्सव और उपेक्षा भारत की विविध और धर्मनिरपेक्ष लोगों की परंपराओं का (डी) आरएसएस द्वारा संचालित एकल विद्यालयों (एकल शिक्षक विद्यालय) और आदिवासी क्षेत्रों में आश्रम विद्यालयों की वैधता।

5. शिक्षकों की अनिश्चितता: (ए) कार्यकाल ट्रैक का उपयोग (बी) शिक्षकों की सभी रिक्तियों के खिलाफ समयबद्ध स्थायी नियुक्तियों से इनकार (सी) उचित और समयबद्ध तरीके से संविदात्मक और पैरा-शिक्षकों के अवशोषण के बारे में कोई गारंटी नहीं है (घ)

आंगनवाड़ी/ईसीसीई कार्यकर्ताओं को उचित सेवाकालीन प्रशिक्षण और पूर्व-प्राथमिक शिक्षक का पूर्ण दर्जा प्रदान नहीं करता है, (ई) स्थायी शिक्षकों को अतिदेय पदोन्नति प्राप्त करने में लंबित समस्याओं का समाधान नहीं करता है , (एफ) पेंशन का कोई वादा नहीं करता है 2003 के बाद शामिल हुए शिक्षकों के लिए (छ) संविदात्मक और तदर्थ शिक्षकों के लिए स्वास्थ्य सुविधाओं और मातृत्व अवकाश का कोई वादा नहीं (एच) नियोक्ताओं को कर्मचारियों की परिवीक्षा अवधि बढ़ाने की अनुमति देता है (i) पदोन्नति में आरक्षण / सामाजिक न्याय के मानदंड को समाप्त करता है (जे)) निजी स्कूल के शिक्षकों के वेतन ढांचे को नियंत्रित करता है (के) सामूहिक सौदेबाजी के लिए शिक्षकों के संघों के लिए कोई जगह नहीं प्रदान करता है और न ही छात्र संघों की अनुमति है (एल) शिक्षकों के रूप में 'स्वयंसेवकों' की भर्ती को प्रोत्साहित करता है और इस प्रकार मांग करता है सार्वजनिक निकायों में आरएसएस कैडर की भर्ती करने के लिए (एम) वरिष्ठता-आधारित पदोन्नति के खिलाफ है, सामाजिक पहुंच को योग्यता मानता है और उस आधार पर पदोन्नति प्रदान करता है, और इसलिए आरक्षण , वरिष्ठता और अकादमिक वरिष्ठता और उपलब्धियों के खिलाफ है।

6. सीखने के निम्न स्तर, बीच में छोड़ने वालों और बाल श्रम को प्रोत्साहन: (ए) डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा देता है (बी) प्रारंभिक व्यावसायिक प्रशिक्षण को प्रोत्साहित करता है (सी) आरटीई मानदंडों और मानकों को कम करने के लिए स्कूल समूहों का परिचय देता है (डी) में कई निकास बिंदुओं का उपयोग उच्च शिक्षा और पहले से ही बदनाम एफवाईयूपी मॉडल का पुनरुद्धार (ई) "इंटर्नशिप" खंड युवा शिक्षार्थियों से सस्ते श्रम निकालने का एक नुस्खा है (एफ) स्कूल / कॉलेज / विश्वविद्यालय बंद होने के बाद भी महामारी कम हो गई है (जी) दो स्तरों को बढ़ावा देना स्कूली शिक्षा में पाठ्यक्रमों और परीक्षाओं की संख्या, ऐसे छात्र जो निम्न स्तर के पाठ्यक्रम और परीक्षाएं करते हैं, उच्च शिक्षा के लिए पात्र नहीं हैं।

7. अत्यधिक केंद्रीकरण: (ए) अकादमिक और कार्यकारी परिषदों को बदलने के लिए विश्वविद्यालयों में केंद्र द्वारा नियुक्त 'बोर्ड ऑफ गवर्नर्स' (बी) शैक्षिक संस्थानों को एनएसी और आउटपुट मापन दृष्टिकोण से जोड़ने के लिए अनुदान (सी) उच्च शिक्षा में केंद्रीकृत होने का निर्णय लेना भारतीय आयोग (एचईसीआई) और उसके चार कार्यक्षेत्र (डी) सभी छात्रवृत्तियां केंद्रीकृत होंगी , और योग्यता आधारित (ई) प्रस्तावित राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन के माध्यम से अनुसंधान पर केंद्रीकृत नियंत्रण (एफ) एनटीए ने स्कूल स्तर के पाठ्यक्रमों पर दबाव डाला कि वे इसके अनुरूप हों एक केंद्रीकृत पाठ्यक्रम (छ) शैक्षिक निर्णय लेने में राज्यों की महत्वपूर्ण शैक्षणिक और संवैधानिक भूमिका की पूर्ण अवहेलना।

8. मातृभाषा शिक्षा का धोखा: (ए) शिक्षा के मातृभाषा माध्यम के दायरे को कम करता है (बी) एनईपी में बताई गई त्रि-भाषा नीति में छात्र की मातृभाषा को अनिवार्य रूप से शामिल नहीं किया गया है, भले ही यह इसमें सूचीबद्ध है अनुसूची और भारत की दो मूल

भाषाओं के रूप में संस्कृत और हिंदी को लागू करने का नुस्खा है (सी) संस्कृत को लागू करना चाहता है और उर्दू के बारे में पूरी तरह चुप रहता है।

9. असंवैधानिक: (ए) सीमित परामर्श के आधार पर तैयार किया गया (बी) शिक्षा में निर्णय लेने के अधिक केंद्रीकरण की मांग करता है , इसकी समवर्ती स्थिति को अनदेखा करते हुए (सी) कोरोना महामारी के दौरान संसद में पारित कराये बगैर जारी किया गया.

10. अलोकतांत्रिक: (ए) संवैधानिक अधिकारों से सम्बंधित पाठों को पाठ्यक्रम से हटाना (बी) हिन्दुत्ववादी मूल्यों को कर्तव्यों के साथ जोड़ कर अधिकार और कर्तव्य के अनूठे संबंध को धूमिल करना (सी) अच्छी शिक्षा तक पहुँच के अंतर ढकना (डी) आरक्षण और योग्यता को ध्वस्त करना.

****

नीट पर अभासिअमं का बयान

राष्ट्रीय पात्रता सह प्रवेश परीक्षा(NEET) को देश में किसी भी मेडिकल कोर्स के लिये एकमात्र सिंगल विंडो दाखिला परीक्षा बनाने का सुप्रीम कोर्ट का फैसला 2017-18 में लागू हुआ. इससे पहले तमिलनाडु के मेडिकल कॉलेजों में दाखिला बारहवीं कक्षा के अंकों के आधार पर होता था. इसने ग्रामीण छात्रों और कमजोर वर्ग के छात्रों के साथ-साथ तमिलभाषी छात्रों को चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन करने और राज्य स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली और विशेष रुप से ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने का एक अच्छा अवसर प्रदान किया.

अभासिअमं मुख्यमंत्री श्री एम के स्टालिन द्वारा उठाये गए कदम की सराहना करता है जिसमे उन्होंने अपने चुनावी घोषणा के मुताबिक तमिलनाडु के छात्रों को केंद्रीकृत नीट परीक्षा से छूट के लिये विधान सभा में एक विधेयक पेश किया. सरकार ने सेवानिवृत न्यायधीश ए के राजन की अध्यक्षता में नौ सदस्यीय कमिटि सामाजिक रुप से पिछड़े वर्गों पर सामान्य चिकित्सा प्रवेश परीक्षा के प्रभाव का अध्ययन करने के लिये बनाई थी. समिति के निष्कर्ष स्पष्ट थे. 2021 में 99% सफल उम्मीदवारों ने कोचिंग ली थी और लगभग तीन-चौथाई दूसरे या तीसरे प्रयास में सफल हुए थे. जब कोचिंग का खर्च लाखों रुपये में होगा, तो गाँवों और कम आयवाले परिवारों के छात्रों से प्रतिस्पर्धा की उम्मीद कैसे की जा सकती है? कोर्स के दौरान छात्रों का विश्लेषण करते हुए समिति ने पाया कि राज्य बोर्ड परीक्षा से प्रवेश करनेवालों ने नीट से प्रवेश करनेवालों की तुलना में मामूली बेहतर प्रदर्शन किया. फिर भी नीट के परिणाम केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के अंग्रेजी बोलनेवाले, संपन्न, शहरी छात्रों के पक्ष में थे. सीबीएसई के छात्र 0.97 से 38.84% और अंग्रेजी माध्यम से छात्र 85.12% से बढ़कर 98.01% हो गए, जबकि

राज्य बोर्ड के छात्र 98.23% से घटकर 59.41% और तमिल माध्यम के छात्र 14.88% से घटकर 1.99% हो गए. जिन छात्रों के माता-पिता की आय अधिक थी, उनमे 6% से अधिक की वृद्धि हुई और कम आयवाले लोग इसी तरह नीचे आए. सरकारी मेडिकल कॉलेजों में ग्रामीण छात्रों की संख्या में लगभग 16% की गिरावट आई और शहरी छात्रों की संख्या में इतनी ही वृद्धि हुई.

राज्य सरकार इस बात को लेकर आशंकित है कि इस प्रवृति के जारी रहने से राज्य की राज्य की प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं में पर्याप्त चिकित्सक नहीं हो पायेंगे और चिकित्सा विज्ञान की स्नाकोत्तर पढाई भी बाधित होगी. अभासिअमं तमिलनाडु के छात्रों को नीट परीक्षा की शर्तों से 'स्थायी रुप से छूट' देने की मांग करने के मकसद के मद्देनज़र राज्य के विधायकों और राज्य सरकार के अत्यंत अच्छे निर्णय का समर्थन करता है. इस फैसले को सबसे ज़रूरी माना जाना चाहिए, क्योंकि राज्य में हर साल कई सत्तरह-अठारह साल के बच्चों की दुखद आत्महत्याएँ नीट को लोगों की लोकतांत्रिक इच्छा के विरुद्ध और उनके लिये गंभीर खतरा सिद्ध करती हैं. हमें याद है कि एक सत्तरह वर्षीय दलित छात्र पी अनीता ने सर्वोच्च न्यायालय से पूछा था कि जब उन्हें समान शिक्षा प्रणाली से वंचित कर दिया गया था तो फिर उससे एक सामान्य प्रवेश परीक्षा में बैठने की उम्मीद कैसे की जा सकती थी. शिक्षा की एक समान और गैर-भेदभावपूर्ण प्रणाली को सार्वभौमिक बनाने के लिये अभासिअमं निरंतर अभियान चलाता रहा है. हमारा दृढ विश्वास है कि हमारे जैसे विविध, लेकिन अत्यंत पदानुक्रमित समाज में एक विकेन्द्रीकृत पात्रता और प्रवेश प्रणाली सबसे अच्छा विकल्प है. विधेयक को राष्ट्रपति की मंजूरी के लिये भेजा गया है. राज्य सरकार ने केंद्र सरकार से अपील की है कि वह तमिलनाडु के लोगों के जनादेश और केन्द्र और राज्यों के बीच संवैधानिक संबंधों की संघीय प्रकृति का सम्मान करे. अभासिअमं ने भारत के राष्ट्रपति से बिल पर तुरंत अपनी सहमति देने की अपील की है. यह केन्द्र सरकार से तमिलनाडु के लोगों के जनादेश और संविधान के संघीय चरित्र का सम्मान करने का अनुरोध करता है और शिक्षा को समवर्ती सूची में होने का मान देने का भी अनुरोध करता है.

प्रो. जगमोहन सिंह, अध्यक्ष, अभासिअमं
डॉ. विकास गुप्ता, संगठन सचिव, अभासिअमं

****

अभाशिअंम का चार वर्षीय कोर्स के खिलाफ बयान:

एआईएफआरटीई चार वर्षीय स्नातक कार्यक्रम को फिर से शुरू करने की निंदा करता है जिसे 2014 में एक साल के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों और शिक्षकों द्वारा पूरी तरह से खारिज कर दिया गया था। अब कोवि ड -19 महामारी के प्रतिबंधों का उपयोग करते हुए इसे फिर से लागू किया गया है . छात्र संघों/संगठनों या कर्मचारी संघों और कॉलेज और विश्वविद्यालय शिक्षक संघों के अखिल भारतीय संगठनों और केंद्रीय विश्वविद्यालय शिक्षक संघों से परामर्श किये बगैर ऐसा किया गया है.

FYUP के विरोध का आधार इसका तर्कहीन चरित्र है। प्रत्येक वर्ष के बाद निकास-प्रवेश बिंदुओं के साथ चार वर्ष का पाठ्यक्रम है, जिसमें प्रथम वर्ष के बाद एक प्रमाणपत्र दिया जाता है ; द्वितीय वर्ष के बाद डिप्लोमा ; तीसरे वर्ष के बाद बीए ऑनर्स की डिग्री और चौथे वर्ष के बाद रिसर्च के साथ बीए ऑनर्स की डिग्री। इससे एमए की डिग्री की अवधि एक साल तक कम हो जाती है और एम.फिल डिग्री खत्म हो जाती है। इन पाठ्यक्रमों में से प्रत्येक की अखंडता से गंभीर रूप से समझौता किया गया है और इसका इरादा स्पष्ट रूप से छात्रों को, विशेष रूप से वंचित और हाशिए के वर्गों के छात्रों को जल्द से जल्द इसे छोड देने पर मज़बूर करने का है। यह दावा कि वे अपने अकादमिक बैंक क्रेडिट के आधार पर बाद में किसी भी समय फिर से नियमित रुप से शामिल हो सकते हैं, यह निर्दिष्ट नहीं करता है कि यह जमा किए गए क्रेडिट के मूल्य और उन विषयों या पाठ्यक्रम में सीटों की उपलब्धता पर निर्भर करता है जिनके लिए वे पात्र हो सकते हैं । बेशक, जो उनके लिए हमेशा "खुला" रहेगा , वे महंगे निजी ऑनलाइन पाठ्यक्रम होंगे, यदि वे उन्हें वहन कर सकते हैं।

एआईएफआरटीई ने छात्रों और फैकल्टी से एफवाईयूपी को जबरन लागू करने का विरोध जारी रखने का आग्रह किया है । यह मांग करता है कि इस पाठ्यक्रम को तुरंत वापस ले लिया जाए और स्नातक संरचना के किसी भी अन्य व्यवधान को रोका जाए। स्नातक कार्यक्रम में सुधार के लिए तत्काल आवश्यक कदम उठाए जाने के लिए स्थायी शिक्षकों की समय पर नियुक्ति, पाठ्यक्रमों की अकादमिक सामग्री को लोकतांत्रिक रूप से विकसित करना और मौजूदा स्थायी रिक्तियों की भरपाई के लिये अनुबंध पर शिक्षकों की नियुक्ति की प्रथा को रोकना आवश्यक कदम हैं।

मनमाना 'प्रयोग' जो छात्रों के भविष्य के साथ खिलवाड़ करते हैं और संकाय का मनोबल गिराते हैं , मौजूदा सार्वजनिक वित्त पोषित विश्वविद्यालयों और संस्थानों को नष्ट करने और निजी निगमों के लिए या तो उन्हें खरीदने या उच्च शिक्षा में प्रवेश करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। यह बाजारीकरण यह सुनिश्चित करेगा कि वंचित और हाशिए के बहुजनों को कभी भी उच्च शिक्षा तक पहुंचने का अवसर न मिले।

****

अभाशिअम गांधी जयंती पर, गांधी जी को और औपनिवेशिक शासन के बाद भारत पर लगे पहले सांप्रदायिक-धब्बे को याद करता है

साम्राज्यवादी ताकतों के हाथों पूंजीवादी शोषण के खिलाफ और किताबी-ज्ञान के माध्यम से ब्राह्मणवादी विचारधारा के मतारोपण के विरोध में , गांधीजी सभी बच्चों के लिए बुनियादी तौर पर 'शारीरिक श्रम और मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम पर आधारित शिक्षा की एक सामान्य प्रणाली ' को संस्थागत बनाना चाहते थे। यह सभी बच्चों के लिए समान गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अधिकार का उनका दृष्टिकोण था जो विविधताओं को बढ़ाए व जहां समुदायों को एक भागीदारी मोड में व्यवस्था का प्रबंधन करना था और राज्य सभी आवश्यक प्रावधानों का अंतिम गारंटर था।

NEP2020 के लागू होने से शिक्षा का अधिकार खतरे में है। यह वही आरएसएस है जिसने गांधी की हत्या करवा के भारतीय धर्मनिरपेक्षता को कलंकित किया, जो भारत को ऐसी नीतियां दे रहा है। इसलिए शिक्षा के माध्यम से साम्प्रदायिक और जातिगत विभाजन पैदा करने के उद्देश्य से शिक्षा को साम्प्रदायिक बनाने की प्रक्रिया अपने सबसे असहनीय रूपों में चल रही है। गांधी जयंती पर, हम गांधीजी को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में याद करते हैं, जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियों के खिलाफ लड़ाई लड़ी और साथ ही जो ब्रिटिश भारत के बाद के पहले सांप्रदायिक हमले के शिकार हुए ।

शोषक ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियों के विरोध में गांधीजी की अपरिहार्य भूमिका थी। शोषक साम्राज्यवादी नीतियों के आलोचक के रूप में गांधी जी को इस अवधि में याद किया जाना चाहिए, जिसमें नई साम्राज्यवादी ताकतें भारतीय शिक्षा पर असहनीय हमला कर रही हैं।

इन सबसे परे, गांधी को भारत के पहले धार्मिक आतंकवादी , नाथूराम गोडसे, जो आरएसएस से संबंधित थे, द्वारा सांप्रदायिक हिंसा के पहले शिकार के रूप में याद किया जाना चाहिए। वही आरएसएस ने नौकरशाही के शीर्ष पदों सहित सभी जगहों पर घुसपैठ की है. यदि आप केंद्रीय विश्वविद्यालयों के हाल ही में नियुक्त कुलपतियों और अकादमिक परिषद के सदस्यों को देखें, तो उनमें से ९९% , किसी न किसी तरह से , संभवतः आरएसएस से जुड़े होंगे। गांधी ने भारत में सांप्रदायिक विभाजन पैदा करने के आरएसएस के प्रयासों की तीखी आलोचना की। लेकिन अब, आरएसएस और अन्य सांप्रदायिक ताकतें अपने सांप्रदायिक हित के अनुसार गांधी को हिंदुत्व के प्रतीक के रूप में चित्रित करने की कोशिश कर रही हैं , जैसे उन्होंने बाबा साहेब अंबेडकर को चित्रित किया था।

आज ब्राह्मणवादी विचारों के अनुरूप इतिहास को विकृत किया जा रहा है। वर्तमान परिदृश्य में मोपला विद्रोह के शहीदों को स्वतंत्रता संग्राम के शहीदों की सूची से हटाने का ICHR का निर्णय और दिल्ली विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम से दलित लेखकों के कार्यों को हटाना आदि इन परिवर्तनों के कुछ उदाहरण हैं। वे अत्यधिक प्रतिक्रियावादी तरीके से छात्रों की सोच को बदल रहे हैं।

इस युग में, जिसमें साम्राज्यवादी लूट और भारतीय शिक्षा पर फासीवादी हमला अपने चरम पर पहुंच गया है , शिक्षा का अधिकार , वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सार्वभौमिक शिक्षा आदि तेजी से खाये जा रहे हैं। इसलिए, हमें NEP2020 और अन्य सरकारी नीतियों और सड़ी-गली शिक्षा व्यवस्था के खिलाफ एक दीर्घकालिक सतत संघर्ष छेड़ने की जरूरत है। हमें NEP Quit India और NEP-2020 को रद्द करने के अपने नारों को ज़ोरों से उठाना चाहिए और भारतीय शिक्षा के सांप्रदायिकरण और निजीकरण के सरकार के सभी प्रयासों की कड़ी निंदा करनी चाहिए। इसके लिए AIFRTE सभी छात्रों और शिक्षकों और अन्य शैक्षिक कर्मचारियों से गांधी जयंती मनाने की अपील करता है ताकि शिक्षा पर सांप्रदायिक हमलों का विरोध किया जा सके।

****

सख्सियतें:

ज़मीनी हक़ीकतों के साथ जुड़ी शख्सियत – कमला भसीन

-लाल्टू,

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जानी-मानी और ज़मीनी हक़ीकतों के साथ जुड़ी भारतीय शख्सियत कमला भसीन का 25 सितंबर को देहांत हो गया। वे सामाजिक और आर्थिक विकास पर तरक्कीपसंद और सर्वांगीण सोच रखने वाली थीं। खास तौर पर स्त्रियों और बच्चों की तालीम पर उन्होंने काम किया जो उनकी कई किताबों में प्रकाशित हुआ। कई सालों तक 'सेवा मंदिर'नामक संस्था में काम करने के बाद उन्होंने संयुक्त-राष्ट्र-संघ के आहार और खेती (FAO) की संस्था के साथ भी काम किया। इस दौरान वे बांग्लादेश गईं और वहाँ गोणो-स्वास्थो-केंद्रो (जन-स्वास्थ्य-केंद्र) नामक गाँवों में काम कर रही संस्था के ज़फरुल्ला चौधरी से मिलीं और उनसे प्रभावित हुईं। अपने काम के सिलसिले में उन्हें दीगर मुल्कों में जाना पड़ता था। ऐसे ही किसी सफर के दौरान वे पाकिस्तान गईं और वहाँ स्त्रियों के सम्मेलन में शामिल होकर उनके साथ'औरत का नारा-आज़ादी, बच्चों का नारा-आज़ादी, हम ले के रहेंगे-आज़ादी, है प्यारा नारा-आज़ादी'गाया और हिंदुस्तान लौटकर इस नारे कोअलग ढंग से जगह-जगह सुनाया।
सरल भाषा में बच्चों के लिए लिखी उनकी कविताओं में से सबसे अधिक पढ़ी जाने वाली कविता है - 'क्योंकि मैं लड़की हूँ, मुझे पढ़ना है।'यू-ट्यूब पर उनके अपने पाठ से नीचे यह कविता दी जा रही है -

(बाप बेटी से) पढ़ना है, पढ़ना है, तुम्हें क्यों पढ़ना है
पढ़ने को बेटे काफी हैं, तुम्हें क्यों पढ़ना है
(बेटी) - जब पूछा ही है तो सुनो मुझे क्यों पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूँ, मुझे पढ़ना है
पढ़ने की मुझे मनाही है, सो पढ़ना है
मुझमें भी तरुणाई है, सो पढ़ना है
सपनों ने ली अँगड़ाई है, सो पढ़ना है
कुछ करने की मन में आई है, सो पढ़ना है

क्योंकि मैं लड़की हूँ, मुझे पढ़ना है
मुझे दर-दर नहीं भटकना है, सो पढ़ना है
मुझे अपने पाँव चलना है, सो पढ़ना है
मुझे अपने डर से लड़ना है, सो पढ़ना है
मुझे अपना आप ही गढ़ना है, सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूँ, मुझे पढ़ना है
कई जोर-ज़ुल्म को समझना है, सो पढ़ना है
कई क़ानूनों को परखना है, सो पढ़ना है
मुझे नए धर्मों को रचना है, सो पढ़ना है
मुझे सब कुछ ही बदलना है, सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूँ, मुझे पढ़ना है
हर आलिम/ज्ञानी से बतियाना है, सो पढ़ना है
मीरा, राबिया का गाना गाना है, सो पढ़ना है
मुझे अपना राग बनाना है, सो पढ़ना है
और अनपढ़ का नहीं जमाना है, सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूँ, मुझे पढ़ना है।

कमला भसीन की खासियत यह थी कि उनकी बातों में सैद्धांतिक जटिलता नहीं होती थी। वे साफगोई से बात करती थीं और हमेशा जन-पक्षधर गतिविधियों में सक्रिय रहीं। चूँकि ग़रीब और गाँव की औरतों में साक्षरता कम है, इसलिए सरल ज़बान और नाटकीय तरीकों से बात करने में महारत रखते हुए वे आदिवासी इलाक़ों और सामान्य औरतों बच्चों के साथ काम करती थीं। 'वन बिलियन राइज़िंग' (सौ करोड़ उठ खड़े हैं) नामक जनांदोलन की संचालक रहते हुए उन्होंने पूँजीवाद के खिलाफ लगातार बयान दिए और हाल में चल रहे किसान आंदोलन को समर्थन दिया। वे पूँजीवाद और पितृसत्ता में गहरा रिश्ता देखती थीं। बदलाव के लिए सांस्कृतिक आंदोलनों पर जोर देती थीं और भाषा और संस्कृति में छोटे-छोटे बदलावों के जरिए सोच बदलने में यक़ीन रखती थीं। स्त्रीवादी मंच 'संगत'के साथ उनका जुड़ाव था। स्त्रीवाद को वैचारिक जटिलताओं से अलग एक खुले स्वरूप में देखने के लिए उन्होंने अनेकों चर्चाएँ कीं और कुछ किताबें लिखीं।

****

गेल ओमवेट: जाति व लैंगिक उत्पीड़न के ख़िलाफ़ दलित-बहुजन की चहेती साथिन

-फ़िरोज़ अहमद

25 अगस्त 2021 को दलित-बहुजन आवाम में विशेष प्यार पाने वाली कार्यकर्ता-समाजशास्त्री गेल ओमवेट का महाराष्ट्र के सांगली ज़िले के कासेगाँव में निधन हो गया। 1941 में अमरीका में जन्मीं गेल 1963-64 में एक फ़ेलोशिप पर भारत आई थीं और फिर पश्चिम भारत में 1873-1930 के दौरान चले सत्यशोधक व ग़ैर-ब्राह्मणवादी आंदोलन विषय पर अपने शोध के

संबंध में ज़मीनी तथ्य जुटाने 1970-71 में भारत दोबारा लौटीं। भारत में बसने के बाद 1983 में उन्होंने अमरीकी नागरिकता त्यागकर भारतीय नागरिकता अपना ली। इस बीच , 1980 के आसपास, फुले-अंबेडकरवादी-मार्क्सवादी कार्यकर्ता भारत पाटणकर व अन्यों के साथ मिलकर वो श्रमिक मुक्ति दल के गठन में शामिल रहीं। यह संगठन महाराष्ट्र के ज़िलों में जाति , वर्ग, लिंग, ज़मीन व जल आदि के संघर्षों को पिरोकर काम करता है। गेल ने गाँव में रहकर लड़ना-लिखना चुना और इस तरह उनकी अकादमिक व कार्यकर्ता की भूमिकाओं के बीच एक सहज समन्वय बना रहा जिसने न सिर्फ़ अकादमिक गलियारों के कुलीन तत्वों को चुनौती देते हुए फुले-अंबेडकर के विमर्श को मज़बूती प्रदान की, बल्कि उन्हें दलित-बहुजन आवाम की चहेती भी बनाया। रैलियों, पदयात्राओं, सम्मेलनों में शिरकत करते हुए व लोगों के बीच मराठी में अपनी बात कहते हुए , उन्होंने अकादमिक उत्कृष्टता के साथ ज़मीनी कार्यकर्ता के जीवंत मेल की मिसाल पेश की। इस तरह लोगों के बीच रहकर काम करने का ही नतीजा था कि उनकी बात उनके लोगों की रही और लोगों तक पहुँची। उनके अकादमिक-राजनैतिक जीवन पर इंदुताई पाटणकर व दलित-बहुजन विषय पर उनकी वरिष्ठ अमरीकी स्कॉलर एलेनोर ज़ेलियोट का प्रभाव रहा। तुकाराम , चोखामेला, बुद्ध आदि के जाति-विरोधी साहित्य का अनुवाद करने के अलावा उन्होंने 25 से ज़्यादा किताबें लिखीं, जिनमें उनके शोधकार्य पर आधारित पुस्तक सहित सीकिंग बेगमपुरा, अंडरस्टैंडिंग कास्ट, वी विल स्मैश द प्रिज़न आदि प्रमुख हैं। गेल ने भारत के विभिन्न उच्च-शिक्षा संस्थानों में अध्यापन कार्य भी संभाला। 1999 में अरुंधति रॉय के नाम लिखे उनके खुले पत्र ने बड़े बाँधों के ख़िलाफ़ चलाए जा रहे आंदोलनों के सामने दलित-आदिवासी नेतृत्व तथा सूखा व बंजर भूमि के संदर्भ में खेती-किसानी के लिए सिंचाई की ज़रूरत से जुड़े महत्वपूर्ण सवाल खड़े किए थे।

(फ़िरोज़ अहमद अ भा शि अ मं की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य हैं)

****

सहयोग

- तमिल कवयित्री सुकिरथरानी

चमड़े की पेंदीवाला बड़ा टोकरा
लोहे की पतली तख्ती व उसमें भरा राख का ढेर
हाथ में ढोए
भीड़-भाड़ गली को पार कर
घर के पिछवाड़े में
जा खड़ी होती है.
गड्ढे पर पड़े ढक्कन को हटा
उस पर राख उड़ेलते हुए
लोहे की पतली तख्ती से
दायें-बाएं करते हुए
टोकरे में भर सिर पर चढ़ाती है
कूड़े से गिरे पीले जल से सना माथे को पोंछते हुए
अनायास वहाँ से निकल जाती है.
उसका सहयोग मैं
मात्र इतना कर सकता हूँ
शौचघर से दूर मल विसर्जन से
मुक्त एक वक्त रह सकता हूँ .

(अनुवाद: प्रो. एन. ललिता, हिंदी विभागाध्यक्ष, आर.वि.एस. कॉलेज,कोयम्बटूर)

****

स्वामी, प्रकाशक व मुद्रक : श्री डोन्काडा रमेश पटनायक (संगठन सचिव, अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच), 11–4–169/1/ए, फ़्लैट नं. 306, प्लेज़ेंट अपार्टमेंट्स, रेड हिल्स, लकड़ी का पुल, ख़ैरताबाद, हैदराबाद 500004 फ़ोन : (040) 23305266, मो. : 0944980396, ईमेल : aifr te.secretariat@gmail.com
प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स ए–21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया जी.टी. रोड, शाहदरा दिल्ली–95 से मुद्रित

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच (अभाशिअमं) के न्यूज़लेटर 'तालीम की लड़ाई' की सामग्री गैर–व्यावसायिक सार्वजनिक इस्तेमाल किया जा सकता है, बशर्ते कि इसके स्रोत का संदर्भदिया जाए।